

देवेन्द्रमुनि शास्त्री

सौना
और
सुगन्ध

सोना और सुगन्ध

[प्रेरक कथाएँ]

श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

प्रकाशक
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
उदयपुर

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय : पुष्प ७६

- सोना और सुगन्ध
- श्री देवेन्द्र मुनि
- प्रकाशक
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर, (राजस्थान)
- प्रथम बार
वि० सं० २०३३
वि० नि० २५०३
जुलाई १९७७
- मुद्रक :
श्रीचन्द्र सुराना के लिए
शैल प्रिंटर्स, माईथान, आगरा-३
- मूल्य :
तीन रुपया मात्र

प्रकाशकांय

श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री की प्रस्तुत लघुकृति 'सोना और सुगन्ध' पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है। इस कृति में २६ लघु कहानियाँ हैं।

मुनिश्री जी इधर गम्भीर अनुशीलनात्मक ग्रन्थों के प्रणयन तथा गुरुदेव श्री के अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादन में अत्यधिक व्यस्त रहें, फिर भी बीच-बीच में अवकाश निकालकर कहानियाँ रूपक आदि लिखते ही रहते हैं। जैन कथाएँ के २५ भागों का सम्पादन भी सम्पन्न किया है और वे प्रकाशित भी हो चुकी हैं। पाठकों में सर्वत्र ही उनका आदर हुआ है। जिस हाथ में जैन कथाएँ पहुँची हैं वहाँ से दुबारा उनकी माँग आई है। इस अभिहृत्ति एवं अनुकूल प्रतिक्रिया से प्रभावित होकर हमने आगे के भागों के प्रकाशन का भी निश्चय किया है और हमारा प्रयत्न चालू है। इसी बीच यह एक लघु कथा संग्रह पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

इस संग्रह की कथाओं का क्षेत्र कुछ व्यापक है। लोक-जीवन में प्रचलित अनेक कथाएँ भी इसमें हैं और पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाएँ भी। प्रत्येक कथा अपने कथ्य को स्वयं ही स्पष्ट कर रही है अतः इस विषय में अधिक कहने की अपेक्षा नहीं।

सोना और सुगन्ध के मुद्रण-सम्पादन में श्रीचन्द्र जी सुराना का सहयोग रहा है साथ ही अर्थदाता सज्जनों ने अर्थ सहयोग देकर उत्साहित किया है एतदर्थ हम उनका हार्दिक आभार मानते हैं। आशा है पाठकों का यह संग्रह पसन्द आयेगा।

—मन्त्री

तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

जैन कथाएँ : भाग १ से २५ तक की तालिका

[कुल पृष्ठ ४६२० (भूमिका सहित) कथाएँ १४४]

भाग	पृष्ठ	कथानाम	कथा संख्या
१	१७२	धर्मवीर धन्ना एवं शालिसन्न	१
२	१६६	सती सुरसुन्दरी, रत्नवती-रत्नपाल, महासती अञ्जना	३
३	१८०	दामनन्नक, हरिबल मच्छी, कामघट कथा, सहस्रमल्ल चोर, रत्नशिखर	५
४	२०४	मणिपति चरित्र	१
५	१६०	इलापुत्र, चिलाती पुत्र, यवराज ऋषि, झुल्लक मुनि, ललितांग कुमार, सुकुमालिका, पुण्डरीक-कण्डरीक आषाढभूति, थावर्चापुत्र	६
६	१८८	महाबल-मलयासुन्दरी चरित्र	१
७	१८४	महासती मदनरेखा, मृगासुन्दरी	२

भाग	पृष्ठ	कथा नाम	कथा संख्या
८	१६०	सतीशीलवती, हंसराज-बच्छराज, सती सुनन्दा, प्रत्येकबुद्ध-करकण्डु, प्र० द्विमुख, प्र० नगति, चित्त-सम्भूति, सगर चक्रवर्ती, धनदकुमार	६
६	२०२	समरादित्य केवलीचरित्र (समराइच्चकहा)	१
१०	२१०	जिनदास-सुगुणी चरित्र	१
११	१८०	वीरभाण-उदयभाण, सुरपाल-शीलवती	२
१२	२००	केसरिया-मोदक, हंस-केशव, केशरी, रत्नसार, बंकचूल, मंगल-कलश, भीमकुमार, वसुराजा, अरुणदेव-देयणी, कुलपुत्र महाबल, सुन्दर राजा	(५)
१३	१६६	चम्पकसेठ, अमरसेन-वयरमेन, चन्द्रसेन - चन्द्रावती नुपुर पण्डिता	११
१४	२१८	प्रद्युम्न चरित्र	४
१५	१८०	उत्तमकुमार, सुलसचरित्र	१
१६	२१२	विद्यासिद्ध वीर अम्बड, विद्याविलास	२

१७	२१२	भविष्यदत्त चरित्र, जय-विजय चरित्र	२
१८	२०८	सम्यक्त्व से सम्बन्धित १५ कथाएँ	१५
१९	१६२	यशोधर नृप चरित्र, मणिशेखर चरित्र	२
२०	१८८	जसमा ओडण, ऋषिदत्ता, लीलापत झणकारा	६
२१	२१८	विक्रमादित्य की १७ साहस कथाएँ	१७
२२	२२६	विक्रमादित्य की २६ नीति एवं धर्म कथाएँ	२६
२३	२२६	विक्रमादित्य की १८ कौतुक कथाएँ	१८
२४	१८२	विक्रमादित्यपुत्र-विक्रमचरित्र की ५ कथाएँ	५
२५	१६६	श्रीपाल-मैनासुन्दरी चरित्र	१

अनुक्रमणिका

१. नारी नहीं, नारायणी	१
२. ध्यानयोगी दृढ़प्रहारी मुनि	१०
३. बुद्धि का चमत्कार	१५
४. दस्युराज रोहिण्य	२४
५. अपने पैरों आप कुल्हाड़ी	३३
६. परीक्षा	३६
७. वह विषधर	४६
८. समदृष्टि महावीर	५०
९. सच्चा यज्ञ	५२
१०. भाव तपस्वी कूरगडुक	५६
११. क्षमा और क्रोध का द्वन्द्व	६६
१२. दमसार-शम-सार	८०
१३. नियमनिष्ठा का चमत्कार	८७
१४. माँ की पुकार	९६
१५. दुर्जेय शत्रु को जीता	१०४
१६. उपकारी श्रावक	११३
१७. पाप का घड़ा	११५

१८. ढोंग देखकर बन्दर रोया	१२०
१९. सत्य-असत्य की मिलावट	१२३
२०. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी	१२८
२१. बुराई की स्मृति भी घातक	१३२
२२. सोना और पत्थर	१३६
२३. अपराध एक : दण्ड चार	१३९
२४. शूल को त्रिशूल	१४४
२५. सूत से भूत बँधता है	१५०
२६. सुर-असुर का भेद	१५५
२७. वशीकरण का रहस्य	१६०
२८. समर्पण और स्वार्थ	१६४
२९. सामुदायिकता की भावना	१६७

नारी नहीं, नारायणी

[मुनि भवदेव भावदेव]

रेवती गाथापत्नी बारह व्रतधारिणी श्राविका थी। वह हर समय धर्म-ध्यान में लीन रहती थी। उसके दो पुत्र थे—भवदेव और भावदेव। माता के धार्मिक संस्कार दोनों पुत्रों पर गिरे। भवदेव ने संसार का परित्याग कर श्रमणधर्म स्वीकार कर लिया। भावदेव ने जब तारुण्य अवस्था में प्रवेश किया तब रेवती ने उसका पाणिग्रहण सन्निकटवर्ती ग्राम की एक सुरूपा कन्या नागला के साथ किया। नागला के साथ विवाह कर भावदेव अपने घर आ रहा था कि जंगल में उसे भवदेव मुनि के दर्शन हुए। उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। मुनि भवदेव ने संसार की असारता पर प्रकाश डालते हुए कहा—‘विष से भी विषय भयंकर है। विष एक जन्म में मारता है तो विषय अनन्त जन्मों तक, अतः विवेकी साधक का कर्तव्य है कि वह विषय का परित्याग करे। तू अभी तक विषय के चक्र में फँसा नहीं है अतः सहज रूप में त्याग कर सकता है। भावदेव ! समय रहते हुए चेत जा।’

भावदेव ने कहा—मुनिप्रवर ! आपके त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए प्रवचन को सुनकर मेरे मन में वैराग्य की भावना तरंगित होती है किन्तु जब पत्नी की ओर देखता हूँ तो मुझे अपने कर्तव्य का ध्यान आता है, यदि मैं इस समय साधु बना तो अपने कर्तव्य से च्युत हो जाऊँगा ।

पति की बात को बीच में ही काटते हुए नागला ने कहा—यदि आपको साधु बनना है, तो सहर्ष बन सकते हैं । मैं आपके मार्ग में अवरोधक नहीं बनूँगी । मैं साध्वी नहीं हो सकती, क्योंकि मेरे में इतना सामर्थ्य नहीं है । मैं सासु की सेवा में रहकर आनन्द से धर्म-ध्यान करूँगी । मेरा भी आपसे यही नम्र निवेदन है कि आप संसार में न फँसे । देखिए, आपके भाई साधु हैं, जो दुष्कर साधना से आत्मा को निखार रहे हैं । आप भी इन्हीं के मार्ग का अनुसरण कर अपने जीवन को चमका सकते हैं ।

भाई का हृदयग्राही उपदेश, और पत्नी की प्रबल प्रेरणा से भावदेव भवदेव मुनि के पास साधु बन गये । और नागला धर्म-परायणा सासु की सेवा में रहकर धर्म-ध्यान करने लगी ।

वर्ष पर वर्ष बीतते चले गये, दोनों भाई स्वाध्याय, ध्यान, जप-तप में दत्तचित्त हो गए । जन-जन के मन में त्याग-वैराग्य की निर्मल भावना प्रतिबुद्ध करते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विचरते रहे । भवदेव मुनि का

शरीर उग्र तप और अरस-विरस आहार से काफी क्षीण हो चुका था पर भावदेव के शरीर पर अभी भी जवानी चमक रही थी। उनके मन में विचार आया, कि मैं तो साधु बन गया हूँ पर मेरी पत्नी मेरे अभाव में छटपटा रही होगी। इसी उधेड़-बुन में उनके मन में तूफान पैदा हुआ और साधना को छोड़कर पुनः गृहस्थ बनने के लिए तत्पर हो गये; किन्तु दूसरे क्षण सोचा कि भाई के जीवित रहते गृहस्थ बनना श्रेयस्कर नहीं है। वेष साधु का था पर मन गृहस्थ का हो चुका था। मुनि भवदेव के स्वर्गस्थ होते ही वह प्रसन्नता से अपने गाँव की ओर चल पड़ा। चलते-चलते भावी जीवन की रंगीन कल्पना करने लगा किन्तु एक विचार मन में कौंध गया कि यदि माताजी जीवित होंगी तो मेरी दाल न गलेगी। मेरे सारे मनसूबे मन में ही रह जायेंगे। किन्तु फिर मन में विचार आया कि भाई जीवित नहीं रहा तो माँ किस प्रकार रही होगी। जब मैंने दीक्षा ली थी तब भी वह काफी वृद्ध थी अतः वह अवश्य ही स्वर्गस्थ हो चुकी होगी। भावदेव मुनि क्रमशः विहार करते हुए अपने गाँव पहुँचे। गाँव के बाहर ही कुछ बहिनें आवश्यक कार्य के लिए आई हुई थीं, उनमें नागला बहिन भी थी। मुनि को देखकर वह नमस्कार करने के लिए उनके पास पहुँची। अकेली बहिन को देखकर भावदेव मुनि ने पूछा—बहिन ! क्या तुम इसी ग्राम में रहती हो ?

नमस्कार कर कहा—हाँ महाराज !

भावदेव मुनि—इस ग्राम में रेवती गाथापत्नी नाम की एक श्राविका रहती थी, क्या तुम उसे जानती हो ?

श्राविका—उस धर्म-परायणा श्राविका को कौन नहीं जानता, वह तो इस गाँव में प्रथम नम्बर की श्राविका थी, पर उसे शान्त हुए कई वर्ष हो गये हैं ?

भावदेव ने सोचा—अच्छा हुआ एक झंझट तो कम हो गई अब मेरे अभीप्सित मार्ग में कोई भी बाधक तत्त्व नहीं रहा है । उसने दूसरा प्रश्न पुनः किया—‘उसकी पुत्र-वधू नागला को भी तू जानती है ? वह इस समय कहाँ पर है ?’ बहिन ने मुनि के चेहरे को देखा और पहचान गई कि यह तो मेरे पति भावदेव हैं । एकाकी क्यों आये हैं ? क्यों पूछ रहे हैं ? क्या कहीं दाल में काला तो नहीं है ?

उसने अपने आपको प्रकट न कर कहा—महाराज ! वह मेरी सहेली है, मैं उसे अच्छी तरह से जानती हूँ, वह अपनी सासु की भाँति ही दृढ़धर्मा श्राविका है । अपने व्रत-नियमों का अच्छी तरह से पालन करती है । उसने विवाह करते ही अपने पति को त्याग-मार्ग की ओर प्रेरित किया, वह आजन्म ब्रह्मचारिणी है । पर मुनिप्रवर ! आप महिलाओं के सम्बन्ध में इतने प्रश्न क्यों कर रहे हैं ? आपको महिलाओं के सम्बन्ध में इस प्रकार छानबीन करना शोभा नहीं देता है ।

भावदेव मुनि—तुम्हें पता नहीं है; नागला मेरी धर्म-पत्नी है ।

श्राविका—आश्चर्य है ! जहाँ तक मुझे पता है कि जैनमुनि के पत्नी नहीं होती और आप कह रहे हैं कि वह मेरी पत्नी है, यह क्या बात है ?

भावदेव—श्राविका तुम्हारा कहना सत्य है, किन्तु मैं विवाह करने के तुरन्त पश्चात् ही भाई के उपदेश से साधु बन गया था । पर अब.....

श्राविका—‘अब’ का तात्पर्य मैं नहीं समझी ? क्या आप पुनः उसके साथ सांसारिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं ? यदि चाहते हैं तो मैं स्पष्ट रूप से आपको सूचित करना चाहती हूँ कि वह आपको स्वप्न में भी नहीं चाहेगी । उसके लिए आप अपनी साधना खण्डित न करें ।

भावदेव—श्राविका ! तुझे क्या पता उसके मन की बात ? जितनी मुझे उससे मिलने की आतुरता है उससे कहीं अधिक उसकी आतुरता होगी और वह मेरे प्रस्ताव को कभी भी नहीं ठुकराएगी ।

श्राविका ने कहा—महाराज ! निरर्थक बातों में आपने मेरा समय बर्बाद कर दिया । मुझे क्या लेना-देना इन बातों से । कुछ धार्मिक चर्चा होती तो आपका और मेरा दोनों का ही कल्याण होता । आप जरा आराम कीजिए ।

अभी आप बहुत दूर से चलकर आये हैं। पसीने से तर-बतर हैं, थके हुए हैं, मैं अभी जाती हूँ और नागला को सूचित करती हूँ।

भावदेव मुनि विश्राम के लिए उद्यान में ठहर गये। वे मन में भावी कल्पनाओं के सुनहरे महल खड़े कर रहे थे। मुझे किस प्रकार घर जाना चाहिए और अपना उजड़ा घर कैसे बसाना चाहिए। कुछ ही समय बीता कि वही बहिन एक अन्य बहिन के साथ सामायिक करने के लिए आ गई। भावदेव असमंजस में पड़ गये। इनके रहते मैं घर कैसे जा सकता हूँ। भावदेव अपनी कल्पनाओं में बहे जा रहे थे और वह बहिन सोच रही थी कि इन्हें किस प्रकार प्रतिबोध दूँ। इनकी नौका मध्य भँवर में फँस चुकी है, यदि मैंने जरा भी सावधानी न रखी तो डूब जायेगी, अतः इनका उद्धार करना मेरा परम कर्तव्य है। मैं ऐसा उपाय करूँ जिससे इनकी साधना अखण्ड बनी रहे।

मुनि भावदेव बहिनों के कार्य को देख रहे थे और बहिनें मुनि की गतिविधियों को निहार रही थीं। इतने में आठ-दस वर्ष का एक बालक आया और बहिन के मना करने पर भी वह बहिन की गोद में बैठ गया। बहिन उसे प्यार करने लगी।

बालक ने कहा—माँ तुम बहुत ही अच्छी हो, तुमने आज मुझे बहुत ही बढ़िया खीर खिलाई, वह मुझे बहुत

ही स्वादिष्ट लगी। ऐसी स्वादिष्ट खीर तो मैंने अपने जीवन में प्रथम बार खाई थी, किन्तु माँ खाते समय ध्यान न रहा और एक मक्खी मुँह में चली गई। परिणामस्वरूप वमन हो गई।

उस बहिन ने पूछा—फिर तेने क्या किया ?

माँ ! मैंने उस वमन को पुनः चाट लिया, इतनी बढ़िया वस्तु को मैं निरर्थक कैसे जाने देता—लड़के ने कहा।

बहिन—शाबाश बेटे ! शाबाश ! मुझे तेरी बुद्धि पर अत्यधिक गर्व है। तू सयाना है कभी भी अच्छी चीज को निरर्थक नहीं जाने देता। बेटा ! भविष्य में भी यदि कभी ऐसा मौका आ जाए तो इसी तरह से ध्यान रखना।

माँ-बेटे के पारस्परिक वार्तालाप को सुनकर भावदेव मुनि विक्षुब्ध हो उठे। उनके मन में बहुत ही ग्लानि हुई। मन में विचारने लगे कि ये माँ-बेटे कितनी अधम प्रकृति के हैं। पहली बात तो यह है कि वमन की हुई वस्तु को कोई खाता नहीं है, कौवे और कुत्ते भी उसे खाना कम पसन्द करते हैं। यदि किसी ने खा भी लिया है तो कोई प्रशंसा नहीं करता; पर यह माँ कैसी है, जो प्रशंसा के पुल बाँधती चली जा रही है। अन्त में भावदेव मुनि से नहीं रहा गया। उन्होंने उसे फटकारते हुए कहा—‘तुम्हें लज्जा नहीं आती, इतने निकृष्ट कार्य करने वाले पुत्र की प्रशंसा कर रही

हो, तुम्हें तो समझाना चाहिए था कि समझदार बालक कभी भी ऐसा नहीं करते ।’

नागला तो यही चाहती थी । उसने मुनि को सम्बोधित कर कहा—मुनिप्रवर ! इस अबोध बालक ने वमन को चाट लिया यह ठीक नहीं किया, किन्तु आप जरा गहराई से चिन्तन कीजिए । जिस विषय-वासना को, सांसारिक सुख-वैभव को, आपने वमन समझकर छोड़ दिया उसे ही आप पुनः ग्रहण करने के लिए उद्यत हुए हैं । क्या यह कार्य भी बालक की भाँति वमन चाटने के सदृश नहीं है ? आपने वर्षों तक शास्त्रों का अध्ययन किया है, दीर्घ तपस्याएँ की हैं, स्वाध्याय-ध्यान आदि किया है फिर भी आप बालक की तरह गलती कर रहे हैं । क्या यह आपको शोभा देता है ? आप जिस नागला के प्रेम के पीछे पागल बन रहे हैं, वह नागला मैं ही हूँ । मैं आपसे स्पष्ट शब्दों में निवेदन करना चाहूँगी कि मैं आपका मुनि के रूप में सत्कार कर सकती हूँ, पर पति के रूप में नहीं । प्राण भी चले जायेंगे तो भी मैं प्रण नहीं तोड़ूँगी । भले ही आप मुझे भय, प्रलोभन आदि दिखाएँ पर मैं कभी भी अपने मार्ग से च्युत न होऊँगी, अतः आपके लिए यही श्रेयस्कर है कि अपने भाई भवदेव मुनि की भाँति संयम-साधना में पूर्ण हृदय रहकर अपने जीवन को चमकाएँ ।

नागला के शब्द-तीरों से भावदेव मुनि का हृदय वींध

गया। मैं जिसके पीछे दीवाना बना हुआ हूँ, वह मुझे चाहती भी नहीं है। वह गृहस्थ होते हुए भी साधना में कितनी दृढ़ है और मैं साधु होकर भी च्युत होने जा रहा हूँ, धिक्कार है मुझे ! उनका विवेक जाग्रत हो गया, अँधेरे में भटकते हुए उन्हें प्रकाश मिल गया। उनके हृदय-तन्त्री के तार झनझना उठे—नारी हो तो ऐसी हो जो पतित का भी उद्धार कर दे, गिरते हुए को उठा दे, मुर्दे में जीवन का संचार कर दे। वस्तुतः नागला नारी नहीं नारायणी है, मेरी सद्गुरुणी है, इसने पहले भी मुझे संयम-ग्रहण की प्रेरणा दी और आज भी संयम में दृढ़ रहने की प्रेरणा दे रही है। मैं इसके उपकार को जीवन भर कभी भी नहीं भूलूँगा।

वे वहाँ से चल दिये। उत्कृष्ट तप-जप की साधना से जीवन को चमकाने के लिए।

—परिशिष्ट पर्व

—जम्बू चरित्र

२

ध्यानयोगी दृढ़प्रहारी मुनि

[तस्कर से साधु]

दृढ़प्रहारी तस्करों का अधिपति था। उसका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था, उसके पिता धर्मिष्ठ व नीति, निपुण थे, किन्तु कुसंगति के कारण दृढ़प्रहारी मद्य-मांस का सेवन करने लगा, चोरी और व्यभिचार के चंगुल में फँस गया। पिता ने उसे अनेक उदाहरण देकर समझाया किन्तु उस पर उनका कोई असर न हुआ। एक दिन उसने भयंकर गलती कर दी जिससे पिता ने क्रुद्ध होकर उसे घर से बाहर निकाल दिया। और वह एक जंगल से दूसरे जंगल में भटकता हुआ एक तस्कर पल्ली में पहुँच गया। चोरी करने की कला में वह बहुत ही निपुण था अतः वह पल्लीपति का आदरपात्र बन गया। उसके दृढ़ साहस, प्रबल पराक्रम और प्रहार की अचूकता को देखकर पल्लीपति ने उसका नाम दृढ़प्रहारी रखा और उसे पुत्रवत् प्यार करने लगा। पल्लीपति का निधन हो जाने के बाद वह सभी तस्करों का अधिपति बन गया। सारे तस्कर उसी के निर्देश से कार्य करने लगे।

एक दिन वह तस्करों के समूह को लेकर एक बड़े नगर को लूटने के लिए चला और नगर को लूटकर सानन्द अपनी पल्ली की ओर लौट रहा था। वह काफी थका हुआ था अतः विश्राम के लिए एक ब्राह्मण के चबूतरे पर बैठ गया। ब्राह्मणी उस समय भोजन बना रही थी। खीर तैयार हो गई थी। अपने द्वार पर अतिथि को देखकर उसने भोजन के लिए दृढ़प्रहारी को निमंत्रण दिया। दृढ़प्रहारी को जोर से भूख लग रही थी, वह चूल्हे के सन्निकट जाकर बैठ गया। ब्राह्मणी को यह व्यवहार अनुचित लगा। उसने कहा—भाई ! यह ब्राह्मण का घर है, घर की मर्यादा का तुम्हें खयाल रखना चाहिए। तुम्हें इतना तो ध्यान होना ही चाहिए कि तुम्हारे छूने के पश्चात् भोजन हमारे काम में नहीं आता। अतः कुछ दूर बैठो, मैं तुम्हें भोजन कराती हूँ।

दृढ़प्रहारी को लगा कि ब्राह्मणी मेरा अपमान कर रही है। उसे क्रोध आ गया। उसके पास तलवार थी। उसने न इधर देखा न उधर; ब्राह्मणी के दो टुकड़े कर दिये। ब्राह्मणी की करुण चीत्कार को सुनकर ब्राह्मण दौड़ता हुआ उसे बचाने के लिए आया। दृढ़प्रहारी ने उसे भी यमलोक पहुँचा दिया। पास में ही गाय खड़ी थी। अपने स्वामी की निर्मम हत्या देखकर वह उसके प्रतिशोध के लिए दृढ़प्रहारी के सामने हुई। दृढ़प्रहारी कहाँ पीछे हटने वाला था, उसने तलवार का ऐसा वार किया कि गाय के पेट को ही चीर

डाला। गाय गर्भवती थी। छटपटाता हुआ गर्भ बाहर निकल आया। बड़ा ही करुण दृश्य था, एक ओर ब्राह्मणी पड़ी थी, दूसरी ओर ब्राह्मण, और तीसरी ओर गाय और उसका बच्चा तड़प रहा था। खून से सारा घर रंग गया था।

दृढ़प्रहारी का अत्यन्त क्रूर हृदय भी उस वीभत्स दृश्य को देखकर द्रवित हो उठा। वह सोचने लगा, 'अरे क्रोध में मैंने यह क्या अनर्थ कर डाला। मैंने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। मैंने नारी-हत्या, ब्राह्मण-हत्या और गौ-हत्या जैसे निकृष्ट कार्य करते समय भी संकोच नहीं किया। भयंकर भूल मैंने की थी और उसने मुझे सत्य शिक्षा दी थी; पर मैंने क्रोध में पागल बनकर कितना भयंकर अनर्थ कर दिया। मेरे से अच्छी गाय थी जिसने अपने स्वामी के लिए प्राणोत्सर्ग कर दिया। मेरे में इतना भी विवेक नहीं। हाय! अधमता की भी मैंने पराकाष्ठा कर दी।' उसने तलवार वहीं पर डाल दी और मुनि वेष धारण कर श्रमण बन गया।

वह चिन्तन करने लगा कि एकान्त शान्त स्थान में जाकर ध्यान करने की अपेक्षा मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं नगर के द्वार पर खड़े रह कर ध्यान करूँ, क्योंकि मैंने इस नगर के सैकड़ों व्यक्तियों को मारा है, सैकड़ों युवतियों के सुहाग को लूटा है, सैकड़ों माताओं की गोद सूनी की है। लाखों करोड़ों की सम्पत्ति का अपहरण कर हजारों

व्यक्तियों के मन में दुःख की दावाग्नि सुलगाई है। वे सभी मेरे दुष्कृत्यों से परिचित हैं अतः वे मुझे नाना प्रकार के परीषह देंगे जिससे मेरे कर्मों की निर्जरा होगी और मैं शीघ्र ही कृत-पापों से मुक्त हो सकूँगा। वह पूर्व दिशा के द्वार पर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ा हो गया।

सैकड़ों स्त्री-पुरुष व बच्चे उस मार्ग से गुजरते, मुनि को देख उनका रोष जाग उठता। अरे ! इसने मेरे भाई को मारा है, अरे इसने मेरे पिता को खत्म किया है, अरे ! इसने तो मेरे पुत्र की हत्या की है। हमारे धन को लूटा है और अब यह पाखण्डी साधु का वेष पहनकर खड़ा है। शर्म नहीं आती इसे ! गुस्से में आकर कोई पत्थरों से पूजा करता, कोई लकड़ी से प्रहार करता, कोई धूल उछालता, कोई उन पर थूकता, कोई गालियों की बौछारें करता। किन्तु दृढ़प्रहारी मुनि शान्त रहते, कभी भी किसी पर क्रोध न करते। डेढ़ महीने तक वे वहाँ पर ध्यानस्थ खड़े रहे। सभी का रोष व जोश शान्त हो गया। फिर प्रतिदिन उधर से सैकड़ों आदमी निकलते पर कोई भी कुछ न कहता।

डेढ़ महीने के पश्चात् दृढ़प्रहारी मुनि उत्तर दिशा के द्वार पर खड़े हो गये। उधर से निकलने वाले लोगों ने भी डेढ़ महीने तक उन्हें भयंकर कष्ट दिये, पर उनकी शान्ति भंग नहीं हुई। डेढ़ महीने के पश्चात् वे पश्चिम के द्वार पर खड़े रहे और डेढ़ महीने तक दक्षिण द्वार पर। इस

प्रकार छह महीने तक भयंकर से भयंकर कष्ट देने पर भी वे कभी भी ध्यान से विचलित नहीं हुए और उन्होंने अपने सम्पूर्ण कर्म नष्ट कर दिये । केवलज्ञान और केवलदर्शन का अद्भुत प्रकाश जगमगा उठा, आकाश में देव-दुन्दुभी गड़गड़ाने लगी—धन्य हो ध्यानमूर्ति, क्षमा के अवतार हृदप्रहारी मुनि को ।

बुद्धि का चमत्कार

दन्तिल नाम का एक हरिजन युवक था। वह बहुत ही बुद्धिमान तथा स्वामिभक्त था। राजप्रासाद एवं प्रधान-मन्त्री के शौचालयों की सफाई करना उसका कार्य था। प्रतिदिन नियमित समय पर वह अपने काम पर पहुँच जाता था। उसे सफाई पसन्द थी। उसके कार्य की कभी भी किसी ने शिकायत नहीं की।

प्रधानमन्त्री के यहाँ पर पुत्र के विवाह की तैयारियाँ चल रही थीं। अपार उल्लासमय वातावरण था। भव्य भवन सजाये गये थे। स्थान-स्थान पर तोरण द्वार बनाये गये थे। पुष्पमालाएँ, कलश व कदलीदल लगाये गये थे। प्रतिदिन सैकड़ों व्यक्तियों के लिए नित नये मिष्ठान्न बनते थे।

दन्तिल प्रधानमन्त्री के आवास की सफाई का पूर्ण ध्यान रखता था। सभी के भोजन के पश्चात् जूठी पत्तलें, इधर-उधर बिखरे हुए जूठन को वह चतुराई से उठाकर उस स्थान को पूर्ण स्वच्छ कर देता था।

एक दिन राज्य के विशिष्ट-शिष्ट अधिकारियों का भोजन था। कुछ लोग भोजन से निवृत्त हो चुके थे और कुछ भोजन कर रहे थे। दन्तिल ने समझा सभी भोजन से निवृत्त हो चुके हैं इसलिए वह अपने सफाई के कार्य में लग गया। वह सफाई कर रहा था। प्रधानमन्त्री ने देखा, उन्हें गुस्सा आ गया। उन्होंने उसे डाँटते हुए कहा—कौन है, दन्तिल ! तुझे शर्म नहीं आती। अन्दर सरदार लोग भोजन कर रहे हैं, और तुझे सफाई की उतावल लगी है। जल्दी निकल जा, नहीं तो डण्डे पड़ेंगे। शूद्र कहीं का !

प्रधानमन्त्री की तर्जना से दन्तिल के स्वाभिमानी मानस को गहरी ठेस पहुँची। उसका स्वाभिमान जाग उठा। क्या कर्तव्य-परायणता का यही पुरस्कार है। मैं अन्त्यज हूँ, यह सत्य है। पर क्या मैं मानव नहीं हूँ। मुझे तो दुत्कारा जा रहा है और उस कुत्ते को अपनी गद्दी पर बिठाये हुए हैं और प्यार से उसके शरीर पर हाथ फेर रहे हैं। मैं सफाई का कार्य करता हूँ इसका यह अर्थ तो नहीं कि मैं कुत्ते से भी गया गुजरा हूँ। उसकी आँखें मिर्च की तरह लाल हो गईं। भुजाएँ फड़फड़ाने लगी, दाँत होठ काटने लगे। वह मन ही मन सोच रहा था कि सत्ता और सम्पत्ति के नशे में एक मानव दूसरे मानव का कितना भयंकर अपमान कर देता है, इसका उसे खयाल ही नहीं। प्रधानमन्त्री हैं तो राज्य संचालन के लिए हैं, परन्तु किसी के स्वाभिमान को लूटने के लिए नहीं हैं। मैं इनके यहाँ

पर कार्य करता हूँ तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि मैंने अपना स्वाभिमान ही बेच दिया है। प्रधानमन्त्री यदि यह समझते हैं कि मैं छोटा हूँ इसलिए क्या कर सकता हूँ, तो मैं भी उन्हें बता दूँगा कि छोटा जो कर सकता है, वह बड़ा भी नहीं कर सकता।

दन्तिल अपमान का घूँट पीकर प्रधानमन्त्री के आवास से बाहर निकल गया। दिन भर विचार-सागर में डुबकियाँ लगाता रहा, रातभर उसे नींद भी नहीं आई। प्रातः होते ही वह राजप्रासाद में अपनी पत्नी के साथ सफाई के लिए पहुँच गया। कुछ देर कार्य करने के पश्चात् वह विश्राम लेने के लिए एक ओर बैठ गया। दन्तिल की पत्नी भी उसके पास ही आकर बैठ गई।

दन्तिल ने वार्तालाप प्रारम्भ करते ही कहा—रामू की माँ! अपना राजा तो मूर्खराज शिरोमणि है। उसे शासन-संचालन की पद्धतियाँ भी परिज्ञात नहीं हैं।

महतरानी ने बात को काटते हुए कहा—पतिदेव! आगे न बोलो, बात करनी हो तो जरा होश से करो। अपना राजा सूर्य की तरह तेजस्वी है, चन्द्र की तरह सौम्य है और कुबेर की तरह दानी तथा धर्मराज की तरह न्याय-प्रेमी है। ऐसे महान राजा की आप निन्दा कर रहे हैं। भविष्य में कभी भी भूलकर निन्दा की तो मैं जबान खीच लूँगी।

महतरानी की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि दन्तिल ने कहा—मेरी बात पूरी सुने बिना ही तू बीच में ही मुझे

डॉटने लगी। मैं कब राजा की न्यायप्रियता और उदारता की निन्दा कर रहा हूँ। मैं तो कह रहा हूँ कि राजा बहुत ही भोला-भाला है और जमाना है चतुर व चालाकों का। उसने अपना सारा कार्यभार प्रधानमंत्री के जिम्मे कर रखा है। वह दिन कहता है तो दिन और रात कहता है तो रात। क्या कभी इस प्रकार राज्य-व्यवस्था चलती होगी। जिसके हाथ में सत्ता आ जाती है वह क्या नहीं कर सकता? आजकल प्रधानमंत्री राजा के विश्वास का अनुचित लाभ उठा रहा है। पुत्र के विवाह के बहाने वह शासन-सूत्र को ही बदलने का षड्यन्त्र कर रहा है। राजा के वरिष्ठ अधिकारी कई दिनों से उसके यहाँ गुलछर्रेँ उड़ा रहे हैं। वे क्या कभी नमकहराम हो सकते हैं। प्रधान-मंत्री राजनीति विशारद है। वह किसी को प्रलोभन देकर और किसी की पदोन्नति कर अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। शस्त्र-अस्त्र भी सँवारे जा रहे हैं। विवाह के बहाने शासन को उलटने का उपक्रम किया जा रहा है। राजनीतिज्ञों का कोई भी विश्वास नहीं है। वे कब क्या करेंगे, कुछ भी पता नहीं है।

महतरानी-पतिदेव ! आज चुप रहें, आपको क्या लेना-देना? यदि किसी ने भी कुछ सुन लिया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। राजा तो इसलिए आपसे नाराज होगा कि आपने उसकी निन्दा की, और प्रधानमंत्री इसलिए क्रुद्ध होगा कि आपने उसके गुप्त षड्यंत्र का भंडाफोड़ कर दिया।

कोई भी राजा हो उससे अपने को क्या लेना-देना ? आप व्यर्थ ही राजनीति में क्यों उलझ रहे हैं । राजा चाहे जो हो, अपने कार्य में तो कोई भी अन्तर पड़ने वाला नहीं है । आप तो दृश्य देखते चले जाइए कि क्या होता है ।

दन्तिल ने मुस्कराते हुए कहा— तू कायर है, यहाँ पर अपनी बात कौन सुनता है ? आस-पास में तो कोई भी व्यक्ति दिखाई नहीं देता ।

महतरानी—भले ही कोई भी दिखाई नहीं देता हो, किन्तु कहते हैं कि दीवारों के भी कान होते हैं । कोई सुन लेगा तो अपने को मुश्किल हो जायेगी ।

राजा शौचादि से निवृत्त होकर गवाक्ष में खड़ा हुआ नगर को निहार रहा था कि उसके कानों में हरिजन दम्पति की बातों की ध्वनि गिरी । उसने ध्यानपूर्वक उसे सुना । उसे क्रोध आ गया । भावी चिन्ताओं की कल्पनाओं से ही वह काँप उठा । प्रधानमन्त्री के कृत्यों पर उसे विचार आया । क्या दन्तिल का कथन सत्य है ? सत्य-तथ्य के परिज्ञान हेतु राजा ने अपने निजी गुप्तचरों को प्रधान-मन्त्री के आवास पर भेजा । उन्होंने आकर जो बताया उससे राजा को दन्तिल के कथन पर पूर्ण विश्वास हो गया । राजा ने शीघ्र ही कार्यवाही प्रारम्भ की और प्रधानमन्त्री को बन्दी बनाकर कारागृह में बन्द कर दिया । प्रधानमन्त्री के तो तोते ही उड़ गये । पुत्र के विवाह की सारी खुशियाँ गायब

हो गई। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि यह किस की करामात है। उसने अपने जीवन में आज दिन तक किसी को भी दुश्मन नहीं बनाया। सभी के साथ उसने भलाई की है, फिर यह यकायक आपत्ति कैसे आ गई? लम्बे समय तक चिन्तन करने के पश्चात् उसे स्मरण आया कि कल मैंने अवश्य ही दन्तिल को बुरी तरह से डाँटा था। लगता है यह उसी का चमत्कार है। छोटा-सा काँटा भी चलते हुए व्यक्ति को रोक देता है। प्रधानमन्त्री ने अपने पुत्र को बुलाकर सारी स्थिति बताई। पिता के निर्देश के अनुसार बहुत सारे थाल मिठाइयों के, मेवे के और वस्त्रा-भूषणों के भरकर वह दन्तिल के घर पहुँचा। दन्तिल अमात्यपुत्र को अपने यहाँ आया देखकर हर्ष से नाच उठा। वह अपनी बुद्धि पर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था। उसने अमात्यपुत्र का स्वागत करते हुए कहा— आपका पधारना किसलिए हुआ है। आप आदेश देते, मैं वहीं पर उपस्थित हो जाता।

अमात्यपुत्र का सिर लज्जा से झुक गया। उसने कहा— दन्तिल ! तुम्हारा और हमारा घर का सम्बन्ध है। विवाह के प्रसंग पर मिठाइयाँ आदि बाँटी गईं। अन्य स्थानों पर अन्य लोग गये, और मैं तुम्हारे यहाँ आया हूँ।

अमात्यपुत्र के स्नेह-स्निग्ध शब्दों को सुनकर दन्तिल पानी-पानी हो गया उसका क्रोध कपूर की तरह उड़ गया।

वह अमात्यपुत्र के चरणों में गिर पड़ा। कहिए क्या आदेश है, जो भी सेवा हो, मैं उसके लिए सदा तत्पर हूँ।

अमात्यपुत्र की आँखें आँसुओं से उबडबा गई—
दन्तिल ! तुम अपना जाल समेटो और पिताश्री को शीघ्र ही कारागृह से मुक्त कराओ।

दन्तिल—आप चिन्ता न करें, मैं ऐसा प्रयास करूँगा जिससे प्रधानमन्त्री शीघ्र ही मुक्त हो सकें।

दूसरे दिन प्रातः होते ही दन्तिल अपनी पत्नी के साथ राजमहल में पहुँच गया। कुछ सफाई करने के पश्चात् विश्राम के बहाने वह उसी स्थान पर बैठ गया जहाँ कल बैठा था और पत्नी से कहने लगा—रामू की माँ ! राजा के कान बहुत ही कच्चे होते हैं। उनमें सोचने की शक्ति ही नहीं होती। वे जैसा सुनते हैं वैसा ही कार्य बिना विचारे कर देते हैं। देख न, प्रधानमन्त्री कितना भला था। जो रात-दिन राजा के और प्रजा के हित में लगा रहता था। उसके समान राजभक्त ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल सकता। उसने अपने जीवन में आज दिन तक किसी का भी बुरा न किया। उसने अपना सारा जीवन राज्यसेवा में लगाया। उसे कारागृह में बन्द कर राजा ने अपने दिमाग का दिवाला ही निकाल दिया। क्या उसकी अमूल्य सेवाओं का यही पुरस्कार है ?

महतरानी—तुम्हें क्या हो गया है ? जब देखो तब

आलोचना के सिवाय कोई बात ही नहीं। कल प्रधान-मन्त्री की निन्दा कर रहे थे और आज उसके गुण बघार रहे हो।

दन्तिल—कल मैंने क्या कहा था? तू व्यर्थ ही मेरे पर दोषारोषण कर रही है। प्रधानमन्त्री के विरुद्ध मैंने एक भी शब्द कभी नहीं कहा। मैं स्वप्न में भी प्रधानमन्त्री के विरुद्ध कुछ भी नहीं कह सकता। तू ही सोच, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन राजा के हित के लिए और प्रजा के हित के लिए उत्सर्ग किया हो, उसकी बुराई मैं कैसे कर सकता हूँ?

महतरानी ने कल की बात की स्मृति दिलाते हुए कहा कि आपने अमुक-अमुक बातें कही थीं।

दन्तिल ने कहा—तुझे पता नहीं कल मैंने शराब अधिक पी रखी थी। उस नशे में यदि मैं कुछ भी बक गया हूँ तो मुझे कुछ भी पता नहीं।

राजा आज भी हरिजन दम्पति की बात कान लगा कर गवाक्ष में खड़े रहकर सुन रहा था। उसे अपने कृत-कार्य पर ग्लानि हुई। अरे मैंने इसके कहने से कितना महान अनर्थ कर डाला। जिस प्रधानमन्त्री ने जीवन भर मेरी व प्रजा की सेवा की, उसे मैंने यह पुरस्कार दिया है।

राजा शीघ्र ही कारागृह में पहुँचा और प्रधानमन्त्री को बन्धनमुक्त कर दिया। क्षमा-याचना कर स-सम्मान उसे घर पहुँचाया।

दन्तिल को जब यह ज्ञात हुआ तो वह अपनी बुद्धि के चमत्कार पर मन ही मन खुश हो रहा था कि मैंने प्रधान-मन्त्री को बता दिया कि छोटा व्यक्ति भी कितना काम का होता है। उसकी उपेक्षा भी कितनी खतरनाक होती है। अब वह भविष्य में कभी भी किसी का अपमान न करेगा।

दस्युराज रोहिणेय

राजगृह का प्रसिद्ध दुर्दान्त दस्यु लोह-खुरो जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र रोहिणेय से कहा—वत्स ! अब मैं संसार से विदा हो रहा हूँ, मेरी अन्तिम इच्छा है कि हमारा महान शत्रु श्रमण महावीर है, जो यदा-कदा राजगृह में आता रहता है उसके पास न जाना और न उसकी वाणी ही सुनना।

पिताजी ! महावीर तो बड़े प्रभावशाली व्यक्ति हैं। राजगृह के सम्राट् से लेकर बड़े-बड़े श्रेष्ठी लोग उनके नाम पर मन्त्रमुग्ध हैं।

पुत्र ! बात सही है, पर वह हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। एक बार हमारे साथी उसके पास गये, पर जब लौटे तो चोर नहीं रहे। राजा श्रेणिक चोरों को बन्दी बना सकता है किन्तु वह अचोर नहीं बनाता लेकिन महावीर के सम्पर्क में आने पर चोर भी अचोर हो जाता है। उसका यह प्रयास हमारे कुलधर्म पर कुठाराघात करता है, अतः मैं तुम्हें सावधान करता हूँ कि उससे बचकर रहना।

न कभी उसके पास जाना और न कभी उसका उपदेश ही सुनना ।

रोहिणेय ने सहर्ष पिता के अन्तिम आदेश को शिरो-धार्य किया । लोहखुरो ने संसार से विदा ली ।

रोहिणेय तस्कर-कृत्य में पिता से भी आगे बढ़ गया । उसने कुछ विद्याएँ प्राप्त कीं । रूप-परिवर्तनी विद्या से वह देखते-ही-देखते रूप बदल देता था और गगन-गामिनी पादुका को पहनकर आकाश में उड़ जाता था । उससे राजा, मन्त्री, आरक्षीदल व नगरवासी सभी परेशान थे । सभी की आँखों में रोहिणेय धूल झोंक देता था । राजगृह की जनता उससे भयभीत हो रही थी । वह दिन दहाड़े चोरी कर लेता था । बड़े-बड़े धनपति उसके नाम से काँपते थे । आरक्षीदल के सभी प्रयत्न निष्फल हो गये, चोर पकड़ में नहीं आया ।

मध्याह्न का समय था । रोहिणेय एक घर में चोरी करने के लिए घुसा । वह धन को ले जाने का प्रयास कर रहा था, कि आसपास के लोग एकत्र हो गये । कोलाहल को सुनकर रोहिणेय वहाँ से भागा, पर शीघ्रता में वह गगन-गामिनी पादुकाएँ वहीं भूल गया । वह जिस मार्ग से जा रहा था, उसी मार्ग के पास भगवान महावीर प्रवचन कर रहे थे । वह भगवान की वाणी सुनना नहीं चाहता था । उसे अपने पिता के आदेश का पालन करना था ।

प्रवचन-स्थल के पास पहुँचते ही उसने चलने की गति तेज कर दी और कानों में अँगुलियाँ डाल लीं। पर नियति को यह कहाँ मान्य था ? उसके दाएँ पैर में एक नुकीला काँटा चुभ गया। उसके पैर लड़खड़ाने लगे। गति में शिथिलता आ गई। उसके अन्तर्मानस में भय था कि पीछा करने वाले कहीं आकर पकड़ न लें। बिना काँटा निकाले तेज दौड़ना सम्भव नहीं था। काँटा निकालने के लिए कानों से अँगुलियाँ निकालना आवश्यक था, और अँगुलियाँ निकालने पर महावीर-वाणी सुनने का खतरा था। उसने कानों से अँगुलियाँ हटाई और काँटा निकाला। उस समय भगवान महावीर देवता के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे थे—‘देवता के नयन अनिमेष होते हैं, उनके पैर भूमि से चार अँगुल ऊपर रहते हैं।’ भगवान के ये शब्द उसके कानों में गिर गये। वह शीघ्र ही कानों में अँगुलियाँ डालकर फिर दौड़ा। महावीर के शब्दों को भूलने का वह प्रयास करने लगा; पर यह नियम है कि जिसे भूलने का प्रयास किया जाता है, वह कभी भी भूला नहीं जाता। उसकी धारणा और भी अधिक पुष्ट हो जाती है। रोहिण्य के कर्ण कुहरों में महावीर की वाणी गूँजती रही।

दिन-प्रतिदिन रोहिण्य का आतंक बढ़ता जा रहा था। नागरिक उससे परेशान थे, वे सभी सम्राट् श्रेणिक के पास पहुँचे। सम्राट् ने उनसे कुशल-क्षेम पूछा। नागरिकों ने नम्र निवेदन करते हुए कहा—आपकी पवित्र

छत्रछाया में सभी प्रकार से आनन्द है किन्तु रोहिण्येय की काली करतूतों से हम अत्यधिक परेशान हो गये हैं। यदि उसका उपद्रव शान्त न हुआ तो हमें राजगृह नगर छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।

सम्राट् श्रेणिक का चेहरा तमतमा उठा। उसी समय कोतवाल को बुलाकर श्रेणिक ने उपालम्भ देते हुए कहा— यह तुमने क्या पोल चला रखी है। मेरी प्रजा परेशान है और तुम सुख की नोंद सो रहे हो।

कोतवाल ने काँपते स्वर में कहा—राजन् ! मैंने उसे पकड़ने के अनेकों प्रयत्न किये हैं, पर खेद है कि मैं उसे पकड़ने में सफल न हो सका। यदि महामात्य अभयकुमार मेरा मार्ग-दर्शन करें तो सम्भव है सफलता प्राप्त हो जाय।

अभयकुमार ने दस्युराज को पकड़ने का कार्य अपने हाथ में लिया और उसी समय एक गुप्त योजना बनाई। रात्रि में नगर के सभी दरवाजे खुले रखे गये। पहरेदार अट्टालिकाओं में छिप गये। मध्य रात्रि में रोहिण्येय ने दक्षिणी द्वार से नगर में प्रवेश किया। छिपे हुए प्रहरियों ने उसे पकड़ लिया। उसे रूप परिवर्तन करने का और वहाँ से भाग निकलने का अवसर ही नहीं मिला।

नगररक्षक ने प्रातःकाल चोर को सम्राट् के सामने प्रस्तुत किया। चोर को देखते ही सम्राट् की भृकुटी तन

गई। उसे फटकारते हुए कहा—रोहिणेय ! तू बहुत ही दुष्ट है, तेने मेरी प्रजा को कितना कष्ट दिया है। अपने पापों को स्मरण कर !

बन्दी ने कहा—राजन् ! आपका कथन बिलकुल ही उचित है। जिस रोहिणेय ने राजगृह को इतना कष्ट दिया है, उसे मृत्यु दण्ड अवश्य ही मिलना चाहिए किन्तु मैं तो रोहिणेय नहीं हूँ, क्या मुझे भी दण्ड मिलना चाहिए।

बन्दी की बात सुनते ही सभा में एक सन्नाटा छा गया। सभी उसके चेहरे की ओर देखने लगे ? सभी के अन्तर्मानस में यह प्रश्न कचोटने लगा क्या यह रोहिणेय नहीं है ? तो फिर यह कौन है ? श्रेणिक ने प्रतिप्रश्न किया—क्या तू रोहिणेय नहीं है ?

हाँ, मैं रोहिणेय नहीं हूँ, मैं तो शालिग्राम का व्यापारी हूँ और मेरा नाम दुर्गचण्ड है।

तू क्या व्यापार करता है ?

जवाहरात का।

रात्रि में कहाँ पर जा रहा था ?

रात्रि में मैं अपने गाँव से राजगृह आ रहा था। कुछ विलम्ब हो गया। प्रहरियों ने मुझे बन्दी बना लिया।

क्या तू सत्य कह रहा है ?

यदि आप श्री को मेरी बात में शंका हो तो आप जाँच कर सकते हैं ।

सम्राट् ने अभयकुमार की ओर संकेत किया । अभय-कुमार ने सम्राट् के संकेत को समझकर एक गुप्तचर शालिग्राम भेजा । उस दिन सभा विसर्जित कर दी ।

शालिग्राम को जनता को रोहिणेय समय-समय पर अर्थ सहयोग देता था । उनके मनोरथों की पूर्ति करता था, अतः रोहिणेय ने जो कहा था शालिग्राम के निवासियों ने उसका समर्थन किया । साक्ष्य के अभाव में रोहिणेय को मुक्त कर दिया गया । अभयकुमार ने उससे क्षमा-याचना करते हुए मैत्री का प्रस्ताव प्रस्तुत किया । रोहिणेय ने कहा—इससे बढ़कर और आनन्द क्या हो सकता है ! दोनों मैत्री के सूत्र में बँध गये ।

रोहिणेय का भोजन महामात्य अभयकुमार के वहाँ पर था । अभयकुमार के प्रशिक्षित रसोइये ने बढ़िया भोजन में ऐसा मादक पदार्थ डाल दिया जिससे वह भोजन करते-करते बेसुध हो गया । अनुचरों ने उसे उठाकर एक नव्य-भव्य भवन में सुला दिया । कुछ समय के पश्चात् जब मादक द्रव्यों का नशा उतरा तो उसे ध्यान ही नहीं आया कि वह कहाँ है ? क्या वह स्वप्न देख रहा है या अन्य । मधुर-मधुर सुवास से उसका मन मुग्ध हो गया । सुन्दर अप्सराएँ आईं । प्रणाम कर कहा—यह स्वर्ग है । यह देखिए स्वर्गीय वैभव । आपका अभी यहाँ पर जन्म

हुआ है। कृपया आप हमारी जिज्ञासाओं का समाधान कीजिए। आपने पूर्वजन्म में ऐसे क्या कर्म किये हैं। क्या आपने चोरी की, डाका डाला, मानवों को कष्ट दिये, या किसी को मारा-पीटा? क्योंकि ऐसे कार्य करने वाला ही तो स्वर्ग में जन्म ग्रहण करता है।

रोहिणेय यह सभी देखकर विस्मित था। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि यह क्या है। उसने महल की ओर देखा और सामने खड़ी अप्सराओं की ओर देखा। उसी समय उसे श्रमण भगवान महावीर की वाणी स्मरण हो आई। इनके नेत्र तो अनिमेष नहीं हैं। इनके पाँव भी धरती को स्पर्श कर रहे हैं। लगता है ये स्वर्ग की अप्सराएँ नहीं किन्तु मानवीय युवतियाँ हैं। सम्भवतः यह अभय-कुमार की कूटनीति का चक्र है। वह सँभल गया। उसने कहा—मैं दुर्गचण्ड हूँ, शालिग्राम का रहने वाला हूँ, मैं मरा नहीं हूँ। मैं तो मनुष्य लोक में ही हूँ।

गुप्तचर ने सारी बात अभयकुमार से कही। अभयकुमार ने स-सम्मान उसे शालिग्राम भिजवा दिया।

रोहिणेय का हृदय परिवर्तित हो गया। उसने सोचा—महावीर के कुछ शब्दों ने भी मेरे जीवन को बचा लिया। मेरे पिता ने उनकी वाणी सुनने की मनाई की, वह उचित नहीं है। मैं भगवान के पास जाऊँ और उनके पावन प्रवचनों को सुनूँ।

रोहिणेय भगवान महावीर की प्रवचन सभा में पहुँचा। भगवान प्रवचन कर रहे थे कि किसी भी प्राणी को न सताओ। जो दूसरों को सताता है वह भी सताया जाता है।

भगवान के पवित्र उपदेश से रोहिणेय का अज्ञान दूर हो गया। उसने सभा में खड़े होकर निवेदन किया— भगवन् ! मैं पवित्र जीवन जीना चाहता हूँ।

श्रेणिक सम्राट् ने अभयकुमार की ओर देखकर कहा—यह तो वही व्यक्ति है जिसे हमारे अनुचरों ने बन्दी बनाया था। लगता है यह बहुत ही धर्मत्मा है। सम्राट् ने अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि उस व्यक्ति ने अपना परिचय देते हुए कहा—मेरा नाम रोहिणेय है। मेरे नाम से राजगृह से आबाल-वृद्ध सभी परिचित हैं। मैंने राजगृह निवासियों को अत्यधिक तंग किया है। मैंने लाखों की ही नहीं अपितु करोड़ों की सम्पत्ति चुराई है। शासन भी मेरी काली छाया से काँपता है। अभयकुमार जैसे बुद्धि के निधान भी मुझे पकड़ने में असमर्थ रहे, पर भगवान आज आपने मुझे पकड़ लिया है।

रोहिणेय ने श्रेणिक सम्राट् की ओर मुड़कर कहा— राजन् ! आप महामात्य अभयकुमार को मेरे साथ प्रेषित कीजिए, मैं अपना सारा गड़ा हुआ निधान उन्हें बता दूँगा जिससे वे, जिनका है, उन्हें लौटा सकें।

श्रेणिक—रोहिणेय ! तुम्हारा क्या विचार है ?

मैं भगवान के चरणों में दीक्षा लेना चाहता हूँ ।

श्रेणिक के ही नहीं, सभी सभासदों के हत्तंत्री के तार झनझना उठे—धन्य है ! यह हिंसा पर अहिंसा की विजय थी, सन्देह पर विश्वास की विजय थी, भय पर अभय की विजय थी ।

त्रिपष्टि० १०/६

—आख्यानक मणिकोष १२/३८



अपने पैरों आप कुल्हाड़ी

नलिनीवन नामक सुन्दर उद्यान में मुनि धर्मघोष आकर ठहरे थे। यह उद्यान पुण्डरीकिणी नामक नगरी के बाहर था। वहाँ का राजा महापद्म बड़ा विवेकवान था। मुनि के आगमन का समाचार सुनकर वह सपरिवार उनके दर्शन करने गया।

मुनि के उपदेश का ऐसा प्रभाव राजा पर हुआ कि उसने राजपाट त्याग कर दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय कर लिया। उसकी रानी पद्मावती ने भी इस शुभ कार्य में कोई आपत्ति नहीं की। उसने कहा—

“स्वामी ! आपके बिना मेरा जीवन नीरस हो जायगा। किन्तु आपकी भावना उच्च है, पवित्र है। अतः इस कार्य में आप मुझे बाधक न मानें।”

राजा ने अपने युवराज पुण्डरीक का राज्याभषेक किया और दीक्षा ग्रहण कर ली। बहुत समय तक तपस्या-मय जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में उन्होंने सिद्धि प्राप्त की।

एक बार मुनिवर का आगमन फिर उसी नगरी में हुआ। राजा पुण्डरीक का भाई कण्डरीक युवराज था। उसने मुनिवर का उपदेश सुना और वैराग्य भावना हृदय में उदित होने से महल में आकर राजा से कहा—

“स्थविर मुनि से धर्म सुनकर अब मैं इस संसार में कोई रुचि रखने में असमर्थ हूँ। कृपया आप मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान करें।”

राजा ने अपने भाई को समझाया-बुझाया और कहा कि कुछ समय तक राज्य का सुख भोगने के बाद ही दीक्षित होना श्रेयस्कर होगा, किन्तु कण्डरीक नहीं माना। अन्त में विवश होकर पुण्डरीक ने आज्ञा दे दी।

शीघ्र ही कण्डरीक मुनि ने अध्ययन द्वारा ग्यारह अंगों का ज्ञान अर्जित कर लिया। किन्तु निरन्तर कठिन तप एवं विहार करते रहने के कारण उनका शरीर रोगग्रस्त हो गया। उस रुग्णावस्था में जब मुनि कण्डरीक विहार करते हुए पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे हुए थे, तब उनकी अस्वस्थता की बात जानकर राजा पुण्डरीक स्थविर भगवन्त के समीप जाकर बोले—

“भगवन् ! कण्डरीक अनगार का शरीर रोगग्रस्त हो गया है। उन्हें औषधि की आवश्यकता है। यदि आप मेरी सानशाला में पधारने की कृपा करें तो उपयुक्त हो।”

ऐसा ही किया गया और अनुकूल औषध से शीघ्र ही

कण्डरीक अनगार स्वस्थ भी हो गए। उनकी स्वस्थता के उपरान्त स्थविर भगवन्त पुनः ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अन्यत्र विचरण करने लगे। केवल कण्डरीक अनगार आज्ञा लेकर उसी नगरी में कुछ समय के लिए ठहर गए।

राजा के यहाँ से प्राप्त होने वाले सुस्वादु भोजन और विश्राम का प्रभाव कण्डरीक अनगार पर कुछ ऐसा हुआ कि उनमें शिथिलाचार आ गया। अब उन्हें तपस्या के स्थान पर सुख-भोग ही अच्छा लगने लगा। उनकी आत्मा में असावधानी आ गई थी।

राजा ने जब यह स्थिति देखी तो वह दुःखी हुआ। अनगार को जाग्रत करने की दृष्टि से वह उनके पास आकर कहने लगा—

“बड़े भाग्य से, बड़े पुण्योदय से आपको मनुष्य जन्म का यह सुन्दर फल मिला है। हम लोग तो अभागे ही हैं जो कि सांसारिक सुख-भोगों में लिप्त हैं। आप ज्ञानी हैं। आपने इनका त्याग कर दिया है। हम अज्ञानी हैं कि उन्हें छोड़ नहीं पाए।”

अनगार को यह बात प्रिय नहीं लगी। उनका मन तो डिग चुका था। किन्तु बार-बार राजा ने जब इन बातों को दुहराया, तब इच्छा न होते हुए भी उन्हें उस नगरी से विहार करने का ही निश्चय करना पड़ा। विहार कर वे पुनः स्थविर के पास चले आये।

लेकिन उनका मन नहीं लगा। तपस्या अब उन्हें कष्ट कर प्रतीत होती। त्याग उन्हें प्रिय नहीं लगता।

अतः एक दिन स्थविर की आज्ञा के बिना ही वे चल पड़े और लौटकर पुण्डरीकिणी नगरी में आ गए। वहाँ आकर राजा पुण्डरीक के निवास के समीप ही अशोक वाटिका में एक अशोक वृक्ष के नीचे आकर एक शिलाखंड पर वे बैठ गए। उनका हृदय बोझिल था। मन में चिन्ता थी। वे अनुभव करते थे कि जैसे उनके सकल मनोरथ भग्न हो गये हों।

इस विचित्र स्थिति में वे बहुत देर तक बैठे रहे। उसी समय राजा की धायमाता किसी कार्यवश वाटिका में आई। उसने अनगार को उदासी में डूबे देखा। आश्चर्य भी हुआ और दुःख भी हुआ। चुपचाप वह राजा के पास जाकर बोली—

‘देवानुप्रिय ! तुम्हारा भाई अशोकवाटिका में बैठा है।’

“मेरा भाई ? कौन ? क्या कण्डरीक अनगार ? वह तो विहार कर गये थे न ?

“हाँ ! किन्तु वे लौट आए हैं; और दुःखी प्रतीत होते हैं। तुम जाकर देखो और यथोचित करो।”

राजा आया। अनगार से उसने पूछा—

“इस प्रकार अकेले, बिना सूचना के ही आप कब

पधारे ? मुनि जीवन आपको पुण्योदय से प्राप्त हुआ है ।
आपका जीवन धन्य है.....।”

राजा ने इसी प्रकार की बातें तीन बार इस प्रयोजन से कहीं कि अनगार की आत्मा जाम जाय; किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । अनगार ने इन बातों को सुनकर अरुचि से मुँह फेर लिया ।

यह देखकर राजा से स्पष्ट पूछा—

“क्या भोगों से प्रयोजन है ?”

“हाँ, है ।”—स्पष्टतापूर्वक अनगार ने भी उत्तर दे दिया ।

वस्तुस्थिति का विचार कर राजा ने तुरन्त कण्डरीक के राज्याभिषेक की तैयारी की और देखते-देखते ही कण्डरीक अनगार से राजा बन गया ।

और राजा पुण्डरीक ने सब कुछ त्याग दिया—
तृणवत् ! पंचमुष्टिक लोचन कर उन्होंने स्वयं ही चातुर्यामि धर्म अंगीकार कर लिया और अभिग्रह धारण किया—

“स्थविर भगवन्त को वन्दन-नमस्कार करने और उनसे चातुर्यामि धर्म अंगीकार करने के पश्चात् ही मुझे आहार कल्पता है ।”

यह अभिग्रह धारण कर पुण्डरीक नगरी से बाहर स्थविर भगवन्त को खोजने निकल पड़े ।

राजा कण्डरीक आकृष्ट भोग-विलास में डूब गए ।

बहुत समय की अपनी तपस्या और त्याग को उन्होंने व्यर्थ गँवा डाला । लालसा की तीव्रता में अधिक गरिष्ठ आहार एवं विलास की अधिकता से उनका शरीर पुनः रोगग्रस्त हो गया । उन्हें पित्त ज्वर हो आया । सारा शरीर दाह से जलने लगा । वेदना की पराकाष्ठा हो गई ।

अपने पैरों पर उन्होंने आप ही कुल्हाड़ी मार ली ।

बहुत समय तक रोग-शोक सहन कर अति विलास के वशीभूत मन लिए वे आर्तध्यान में पड़े । शरीर की रही-सही शक्ति विनष्ट हो जाने पर अन्त में दुःखद मृत्यु प्राप्त कर वे सातवीं पृथ्वी में, सर्वोत्कृष्ट स्थिति वाले नरक में, नारक रूप में उत्पन्न हुए ।

दूसरी ओर पुण्डरीक अनगार ने स्थविर भगवन्त से दीक्षा ग्रहण की, तप एवं स्वाध्याय किया और अन्त में समय आने पर उन्होंने शुभध्यान में लीन होकर, समस्त शक्तियों का त्याग कर शरीर छोड़ दिया ।

यहाँ से काल कर वे सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए । वहाँ से आयु पूर्ण करके वे सीधे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर परम सिद्धि को प्राप्त करेंगे ।

सद्धर्म को जानकर, मानकर और ग्रहण करके भी उसे त्याग देना स्वयं अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार लेना नहीं तो और क्या है ?

परीक्षा

महाप्रतापी राजा नन्द पाटलिपुत्र में राज्य करते थे । शकटार उनका एक मन्त्री था । उसके दो पुत्र थे—श्रियक और स्थूलभद्र ।

स्थूलभद्र बड़ा भाई था । पिता मन्त्री थे । घर में किसी वस्तु की कमी नहीं थी । अधिकार भी असीम थे । धन और अधिकार का मद स्थूलभद्र पर चढ़ गया था और हाँ, यौवन के मद ने उसमें मिलकर स्थूलभद्र को मत्त ही बना दिया था । राज्य की, पाटलिपुत्र की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कोशा वेश्या के रूप पर आसक्त होकर वह दिन-रात उसी के घर पड़ा रहता था । कोशा के रूप-यौवन का वह प्यासा भ्रमर था । लोग कहते थे कि चाहे मछली पानी के बिना रह ले किन्तु स्थूलभद्र कोशा से अलग होकर नहीं रह सकता ।

इस प्रेमी युगल के प्रेम की कथा घर-घर में सुनाई देती थी ।

किन्तु भविष्य के गर्भ में क्या-क्या छिपा है, यह कौन जान पाता है ?

शकटार की मृत्यु हुई। राजा ने श्रियक से कहा—
“अपने पिता के स्थान पर तुम मन्त्री बन जाओ।”

श्रियक ने उत्तर दिया—

“राजन् ! आपकी असीम कृपा। किन्तु स्थूलभद्र मेरे बड़े भाई हैं। उन्हें ही आप उस पद पर आसीन करें।”

किन्तु स्थूलभद्र तो अब किसी अन्य पद पर आसीन होने वाले थे—ऐसे उच्च और पवित्र पद पर, जिसे प्राप्त करने के लिए जन्म-जन्म तपस्या करनी पड़ती है। स्थूलभद्र के हृदय में पिता की मृत्यु के संवाद से एक निराला ही परिवर्तन आया। उसकी सोई हुई, रागमत्त आत्मा प्रबुद्ध हो गई थी। उसने सांसारिक भोग-विलास की तुच्छता और असारता को समझ लिया था। वैराग्य ने उसके आत्म-कमल को विकसित कर दिया था और भोग का पाप-पंक नीचे रह गया था।

स्थूलभद्र ने एक ही झटके से संसार के बन्धन को काट कर दीक्षा ग्रहण कर ली।

साधना चलती रही। विचरण होता रहा। आत्मा का मैल तपस्या के निर्मल जल से धुलकर छूटता रहा। स्थूलभद्र साधुत्व के उच्च से उच्चतर शिखर पर चढ़ते रहे।

एक बार अपने गुरु के साथ विचरण करते हुए वे

पाटलिपुत्र आए। चातुर्मास का समय समीप था। यह जानकर तथा पाटलिपुत्र के लोगों का आग्रह स्वीकार करके उनके गुरु ने चातुर्मास वहीं करने का निश्चय किया।

चार मुनियों ने अपने गुरु के समीप आकर चार भिन्न-भिन्न स्थानों पर चातुर्मास करने की इच्छा प्रकट की। एक मुनि ने सिंह की गुफा में, दूसरे ने सर्प के बिल पर, तीसरे ने कुएँ की मेंड़ पर और चौथे, स्थूलभद्र ने, कोशा वेश्या के घर चातुर्मास करने की आज्ञा माँगी।

आज्ञा मिल गई। परीक्षा आरम्भ हो गई।

कोशा ने जब सुना कि स्थूलभद्र उसके घर पर रहकर चातुर्मास व्यतीत करेंगे, तब वह परम हर्षित हुई। उसकी आँखों में अभी तक वही अतीत घूम रहा था जब वह स्थूलभद्र के साथ प्रेम-विहार किया करती थी। पागल प्रेमिका यह नहीं जानती थी कि उस अतीत और इस वर्तमान में कितना अन्तर आ चुका था? उसके हृदय में पुराने स्वप्न तिर रहे थे।

मुनि स्थूलभद्र ने कोशा से उसके घर में ठहरने की आज्ञा माँगी। कोशा ने उन्हें अपनी चित्रशाला में ठहरने की आज्ञा दे दी। उसके हर्ष, उल्लास और आनन्द की कोई सीमा ही न थी।

कोशा ने मुनि को अपने पुराने प्रेम की याद दिलाने का प्रयत्न किया, साज-शृंगार करके अपने रूप पर लुभाने

का प्रयास किया, बड़े हाव-भाव दिखाए, रूठी भी और अनुनय भी को। किन्तु उसका प्रेमी स्थूलभद्र तो अब था ही कहीं जो उसके रूप-यौवन और शृंगार पर रीझता या उसके अनुनय-विनय पर पसीजता ?

वहाँ तो अब थे मुनि स्थूलभद्र, जो अपनी साधना और मुनि-जीवन की पवित्रता में हिमालय की भाँति अडिग थे। जो जान चुके थे कि भोग कितने दुःखदायी हैं। उनमें कैसा विष भरा है !

कोशा थक गई। वह हार गई। मुनि तन से ही नहीं, मन से भी अविचलित रहे।

और कोशा की इस हार में ही उसके जीवन की सबसे बड़ी जीत छिपी हुई थी। मुनि ने उसे जीवन का सच्चा मार्ग दिखाया और वह शुद्ध हृदय से उस मार्ग पर चल पड़ी। कोशा एक वेश्या थी। अब वह एक सच्ची श्राविका बन गई।

चातुर्मास समाप्त हुआ। चारों मुनि अपने-अपने स्थान से चलकर गुरु के पास पहुँचे। सिंह को गुफा, सर्प के बिल तथा कुएँ की मेंड़ पर चातुर्मास करने वाले मुनि जब आये तो उन्होंने 'कृत दुष्करा' कहा, अर्थात्—'हे मुनियो ! तुमने दुष्कर कार्य किया है।'

किन्तु जब स्थूलभद्र आये तब गुरु ने खड़े होकर उनकी

और हाथ बढ़ाकर विशेष प्रसन्नता व्यक्त करते हुए 'कृत दुष्कर दुष्करः' कहा, अर्थात्—'हे मुनि ! तुमने महान दुष्कर कार्य किया है। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

स्थूलभद्र से इस प्रकार गुरु के विशेष प्रसन्न होने तथा उनके कार्य को अधिक कठिन बताने से अन्य मुनियों के मन में ईर्ष्याभाव उदित हुआ।

आगामी चातुर्मास का समय होने पर सिंह की गुफा में चातुर्मास करने वाले मुनि ने इस बार कोशा के यहाँ चातुर्मास व्यतीत करने की आज्ञा माँगी। गुरु ने उसकी असमर्थता को जानते हुए आज्ञा नहीं दी। किन्तु वह बिना आज्ञा ही कोशा के घर चला गया।

परिणाम जो होना था, वही हुआ। उस मुनि में स्थूल-भद्र जितना चारित्र-बल नहीं था। कोशा के रूप-लावण्य-यौवन को देखकर उसका चित्त सम्हाले न सम्हाला और वह कोशा से भोग की कामना करने लगा।

कोशा श्राविका बन चुकी थी। धर्म के महत्व को जान चुकी थी। वह धर्म से विचलित नहीं हुई। मुनि को शिक्षा देने की दृष्टि से उसने कहा—

“आप मुझे एक लाख मुहरें दें, तब मैं आपकी बात स्वीकार करूँ।”

“अरे, हम तो मुनि हैं। एक लाख मुहरें कहाँ से लाएँ?”

कोशा ने कहा—

“नेपाल नरेश प्रत्येक साधु को एक रत्न-कंबल देता है। उसका मूल्य एक लाख मुहरों जितना है। आप वह ले आइये।”

कामासक्त मुनि कुछ विचार न कर नेपाल के लिए चल पड़ा। रत्न-कम्बल लेकर जब वह लौट रहा था तब मार्ग में चोरों ने उसे लूट लिया। वह फिर नेपाल गया। दूसरा रत्न-कम्बल लाया और इस बार उसे बाँस की लकड़ी में छिपा लिया। जंगल में उसे फिर चोर मिले, किन्तु इस बार वह यह कहकर बच गया कि ‘भाई, मैं तो भिक्षुक हूँ, मेरे पास कुछ नहीं।’

मुनि कोशा के यहाँ आ पहुँचा। रत्न-कम्बल उसने कोशा को दिया। किन्तु कोशा ने उसे मुनि के सामने ही अशुचि में फेंक दिया। मुनि ने कहा—“अरे, अरे, तुमने यह क्या किया? इतनी कठिनाई और कष्ट सहकर लाया गया यह सुन्दर रत्न-कम्बल तुमने गंदा कर दिया?”

तब कोशा ने मुनि की आँखें खोलीं—

“हे मुने! विचार कीजिए, जिस प्रकार अशुचि में गिरने से यह रत्न-कम्बल खराब हो गया, उसी प्रकार काम-भोगों के निकृष्ट कीच में पड़ने से क्या आपकी आत्मा मलिन न हो जायगी? आपने विषय-भोगों को निकृष्ट

समझकर त्याग दिया है, अब आप उन्हीं को पुनः ग्रहण करके क्या श्वान और कौवों से भी हीन बनना चाहते हैं? मैं आपको इस पतन से रोकना चाहती हूँ।”

मुनि की आँखें खुल गईं। उन्होंने अपने पाप का प्रायश्चित्त किया और वहीं से स्थूलभद्र को प्रणाम करते हुए कहा—“मुनि स्थूलभद्र ही श्रेष्ठ मुनि हैं। महान दुष्कर कार्य करने वाले हैं। गुरुदेव का कथन सत्य है।”



७

वह विषधर

अस्थिग्राम में अपना प्रथम वर्षावास पूर्णकर भगवान महावीर श्वेताम्बिका की ओर बढ़े। दो मार्ग श्वेताम्बिका को जाते थे। एक लम्बा था, दूसरा सीधा। भगवान ने सीधे मार्ग से ही जाने का निश्चय किया था।

वे चले तो लोग विस्मित और व्याकुल हो गये। बोले—“प्रभु ! यह क्या करते हैं ? यह मार्ग तो संकटपूर्ण है। इस मार्ग पर एक महा भयंकर विषधर रहता है। वह दृष्टिविष सर्प है। उसके कारण जो कोई भी इस मार्ग से कभी भूल से भी गया है वह न आगे बढ़ सका और न जीवित लौट सका। प्रभु ! इस मार्ग से न जाइए।”

लोग तो सरल थे। भगवान में भक्ति रखते थे, इसलिए उन्हें रोक रहे थे। किन्तु भय किस चिड़िया का नाम है यह बात अभय भगवान जानते तक न थे। वे निर्मल मुसकान बिखेरते हुए शान्त-भाव से आगे बढ़ते चले गये।

उनके जीवन में जो अभय, अद्वेष तथा अखेद था, उसका परिचय वे उस दृष्टिविष सर्प को भी करा देना चाहते थे।

उस सर्प की बाँबी के सम्मुख पहुँचकर भगवान् ध्यानस्थ खड़े रह गये। सर्प ने देखा और कुछ समय तक तो उसका विस्मय ही नहीं गया—‘यह साहस ? मैं साक्षात् मृत्यु हूँ। मेरे सामने इस प्रकार आकर खड़ा हो जाने वाला यह कौन ? कौन है, यह ?’

वह अभी कुछ जान न सका। क्रोधित हो उठा। भयंकर फुफकार उसने छोड़ी और देखने लगा कि जो व्यक्ति ऐसा दुस्साहस करके उसके सामने आया था वह भस्म हो गया कि नहीं ?

किन्तु उसने देखा—वह अद्भुत अभय व्यक्ति वैसा ही प्रशान्त रहकर सामने खड़ा था।

क्रोध और अपनी पराजय की अनुभूति से वह ऐंठने लगा। तड़पकर उसने अपना फन उठाया और प्रभु के चरणों में भीषण दंश किया। किन्तु कुछ भी न हुआ। प्रभु की वही शान्त और प्रेममूर्ति सामने खड़ी दया और करुणा की अमृत वर्षा करती दिखाई दी।

चण्डकौशिक आज अपने इस जीवन में पहली बार पराजित हुआ। उसने आज तक देखे थे उसकी दृष्टि के सामने पड़कर मृत्यु के भय से थर-थर काँपते हुए मनुष्य। किन्तु आज वह जिस मनुष्य को देख रहा था वह तो

निराला ही था। उसके मन में न भय था, न क्रोध था, न द्वेष था, न कटुता थी। वह तो प्रेम और करुणा से ही बना हो, ऐसा दीखता था।

चण्डकौशिक विस्मय से प्रभु के आनन को निहारता ही रह गया। सोचता ही रह गया—‘यह क्या हो रहा है? मेरी सारी शक्ति कहाँ चली गई? मेरे विष को क्या हो गया? और अब तो मुझे क्रोध भी नहीं आ रहा। इस मानव को देखकर मेरे चित्त को यह क्या होने लगा? आखिर यह है कौन? कौन है, यह?’

चण्डकौशिक की वृत्तियाँ प्रभु के दर्शनमात्र से बदलने लगी थीं। किन्तु अब तक वह कुछ जान न पाया था, समझ न पाया था।

तब भगवान ने प्रेम भरे वचन कहे—‘संबुज्झह, किं न बुज्झह!’—समझ, सोच, जान, अरे चण्डकौशिक! अपने में झाँककर अपने को जरा देख तो भला, तू कौन था, क्या हो गया?

प्रभु के इन अमृत वचनों को सुनते ही चण्डकौशिक एक अव्यक्त आनन्द में डूब गया। उसे लगा कि वह जन्म-जन्मान्तरों के पार चला जा रहा है...द्वार पर द्वार खुलते चले जा रहे हैं.....।

प्रभु की कृपा से उसे बोध हुआ। जातिस्मरण ज्ञान का प्रकाश उसके समस्त अतीत पर फैल गया। उसने

जाना—मैं भिक्षु था। क्रोध किया था शिष्य पर, उसका यह परिणाम है।

और उसका जीवन बदल गया। क्रोध, प्रतिशोध और क्षोभ के स्थान पर उसने क्षमा और शान्ति को अपना धर्म बना लिया।

प्रभु अपने मार्ग पर आगे बढ़ गए—अन्य भटके प्राणियों को बोध-प्रतिबोध देने।

अब चण्डकौशिक किसी को कुछ न कहता। नन्हे-नन्हे प्राणी उसके आस-पास खेलते-कूदते रहते। वह अपने ध्यान में मग्न पड़ा रहता।

लोगों ने पहिले उसे बहुत सताया भी; किन्तु उसने सब कुछ शान्ति से, क्षमाभाव से सहन किया। लोगों के लिए यह एक महान् आश्चर्य था।

फिर लोग उसकी पूजा करने लगे। दूध और घृत लाकर उसके पास रखने लगे। उनकी गन्ध से आकर्षित होकर असंख्य चीटियाँ आने लगीं और धीरे-धीरे चण्डकौशिक की देह को ही खाने लगीं। उसे भयंकर वेदना होती, किन्तु उसके जीवन में क्षमाभाव और समभाव आ विराजा था और वह विषधर से देवता बन गया था।

वह किसी से कुछ न कहता।

—नन्दी०



समदृष्टि महावीर

श्रमण महावीर समभाव धारण किए हुए विचर रहे थे। उनके लिए सुख और दुःख समान ही थे। चाहे कोई उनकी सेवा करे या कष्ट दे; उन्हें न किसी से राग था, न द्वेष। सम्पूर्ण मुक्ति के लक्ष्य को अपनी दृष्टि में स्थिर कर वे अपनी साधना में निमग्न रहते थे।

एक बार वे कुम्भारग्राम से कुछ दूर एकान्त वन में ध्यानस्थ खड़े थे। सन्ध्या की वेला थी। उस समय एक गोपाल उधर आ निकला। अपने बैलों को वह चरा रहा था। उसी समय उसे कुछ काम याद आ गया। महावीर को खड़ा देख उसने कहा—

“अरे श्रमण, मेरे बैलों को जरा देखते रहना। तुम्हारे भरोसे छोड़े जाता हूँ। मैं अभी लौटकर आता हूँ।”

महावीर तो अपनी समाधि में मग्न थे और बैल बैल ही थे। चरते-चरते जंगल में कहीं के कहीं निकल गए।

गोपाल जब लौटकर आया तब उसने देखा कि उसके बैल गायब हैं। इधर-उधर ढूँढा, किन्तु वे मिले नहीं; कहीं

दूर निकल गये थे। वह बड़ा कुपित हुआ। अज्ञानी था, उसने सोचा—इस श्रमण ने ही मेरे बैल चुरा लिये हैं और ढोंग कर रहा है। यह सोचकर वह रस्सी से श्रमण महावीर को पीटने की तैयारी करने लगा....

इन्द्र ने स्थिति जानी और तुरन्त पहुँचकर कहा—

“मूर्ख ! तू जिसे चोर समझ रहा है, वे राजा सिद्धार्थ के तपस्वी राजकुमार वर्धमान हैं। तू यह क्या करने जा रहा है ?”

गोपाल बेचारा अपने अपराध की क्षमा माँग कर चला गया।

तब इन्द्र ने महावीर की समाधि भंग होने पर कहा—

“प्रभु ! लम्बे साधना-काल में आप इस प्रकार कब तक उपसर्ग, परीषह और संकट सहते रहेंगे ? कृपा कर मुझे अपनी सेवा में रहने दीजिए ताकि मैं आपकी सुरक्षा कर सकूँ।”

महावीर ने शान्त उत्तर दिया—

“इन्द्र ! आत्म-साधकों के इतिहास में ऐसा न कभी हुआ, न होगा और न हो सकता है। मुक्ति किसी दूसरे के बल पर प्राप्त नहीं की जा सकती। साधक स्वयं अपना रक्षक होता है, वह किसी से संरक्षित होकर नहीं रहता। तुम चिन्ता न करो, मेरे लिए सुख-दुःख समान ही हैं।”

महावीर के इस महत् समभाव और अगाध धैर्य पर विचार करता हुआ इन्द्र उन्हें नमन कर लौट गया। ●

सत्त्वा यज्ञ

बात महाभारत काल की है। महाराज युधिष्ठिर ने एक विराट् अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया और यज्ञ सानन्द सम्पन्न हुआ। भारत के विविध अंचलों से आये हुए राजागण युधिष्ठिर से विदाई लेकर लौट रहे थे। ब्राह्मण-गण दक्षिणा में अपार धन पाकर प्रसन्नता से झूमते हुए धर्मराज युधिष्ठिर की जय-जयकार कर रहे थे। सभी ओर प्रसन्नता का वातावरण था। उसी समय एक न्योले ने यज्ञभूमि में प्रवेश किया। उसने मानव की भाषा में युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए कहा—युधिष्ठिर ! तुम अश्वमेध यज्ञ कर बहुत ही प्रसन्न हो रहे हो, और अपने को महान दानी अनुभव कर रहे हो। पर मैं स्पष्ट शब्दों में तुम्हें बता रहा हूँ कि तुम्हारे प्रस्तुत विराट् यज्ञ का फल उस कुरुक्षेत्र निवासी उच्छ्वृत्तिधारी महान् दानी ब्राह्मण के सेरभर सत्तु के दान के बराबर भी नहीं है, फिर व्यर्थ क्यों अभिमान कर रहे हो ?”

न्योले की बात सुनकर सभी सकपका गये। सभी ने

न्योले को देखा। वह साधारण न्योला नहीं; पर विचित्र न्योला था। उसका आधा शरीर स्वर्ण की तरह चमचमा रहा था। एक पण्डित आगे बढ़ा, उसने न्योले को सम्बोधित कर कहा—तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? हमने शास्त्रोचित यज्ञ कार्य किया है, फिर तुम उसकी निन्दा व आलोचना कैसे कर रहे हो? तुम्हारी आलोचना का क्या आधार है? और वह ब्राह्मण कौन था जिसकी तुम मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर रहे हो?

उस दिव्य रूपधारी न्योले ने मुस्कराते हुए कहा—मैं व्यर्थ की प्रशंसा और निन्दा नहीं कर रहा हूँ, किन्तु जो सत्य तथ्य है, वही तुम्हारे सामने रख रहा हूँ। लो सुनो, वह घटना इस प्रकार है—कुरुक्षेत्र में एक गरीब ब्राह्मण परिवार रहता था, वह उच्छ्वृत्ति द्वारा अपने जीवन का निर्वाह करता था। उस परिवार में ब्राह्मण, ब्राह्मणी, पुत्र और पुत्रवधू ये चार प्राणी थे। वह ब्राह्मण दिन के छोटे भाग में अपने परिवार के साथ भाजन करता था। जो भी मिलता, उससे वे सभी सन्तुष्ट थे।

एक बार कुरुक्षेत्र में भयंकर दुष्काल गिरा। खेतों में कहीं पर भी अन्न पैदा नहीं हुआ। इसलिए वह ब्राह्मण परिवार कई दिनों तक अन्न से वंचित रहा। सभी को लम्बे समय तक उपवास करने पड़े। ब्राह्मण प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक अन्न की तलाश में घूमता, पर अन्त

में सायंकाल निराश होकर घर लौट आता। किन्तु उसका उत्साह कभी भी ठण्डा नहीं हुआ।

चिरकाल के पश्चात् उस ब्राह्मण को कहीं से एक सेर जौ प्राप्त हुए। सारा परिवार जौ को देखकर अत्यन्त आह्लादित हुआ। पुत्रवधू ने उस जौ को पीस कर उसका सत्तू बनाया, और उसके चार विभाग कर दिन के छठे भाग में वे चारों खाने के लिए बैठे। उसी समय एक भूखा अतिथि उस ब्राह्मण के द्वार पर आकर खड़ा हुआ। भूख के कारण उसका शरीर जर्जरित हो रहा था, पेट की अन्तड़ियाँ सूख गई थीं, और कमर झुक गई थी। अतिथि को द्वार पर खड़ा देखकर सभी उठे और उसका योग्य स्वागत कर उचित आसन पर बिठाया। उस अतिथि ने अपना संक्षिप्त परिचय देकर कहा कि मैं भूख से छटपटा रहा हूँ, यदि तुम मुझे इस समय भोजन दे सकोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा।

उस उच्छ्रृतिधारी ब्राह्मण ने कहा—अतिथि देव ! मैंने अपने नियम के अनुसार यह सत्तू तैयार किया है, इसे आप ग्रहण करने का अनुग्रह करें। और उस ब्राह्मण ने अपना हिस्सा अतिथि के सामने रख दिया। अतिथि ने चट से उसे खा लिया, पर उसकी भूख न मिटी। उसकी भूखी आँखें इधर-उधर निहारने लगीं। अतिथि को इधर-उधर निहारते देखकर ब्राह्मण चिन्तित हो गया, किन्तु

दूसरे ही क्षण ब्राह्मणी ने ब्राह्मण से निवेदन किया—
पतिदेव ! आप अतिथि देव को मेरा विभाग प्रदान कर
दें, ताकि ये पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जायें ।

ब्राह्मण—प्रिये ! तुम्हारा कथन सही है पर तुम स्वयं
भी तो कई दिनों से भूखी हो, तुम्हारा कौर छीनकर मैं
इसे कैसे दे सकता हूँ ? तुम्हें भूखी रखकर मैं तुम्हारा
हिस्सा इसे दूँगा तो मुझे पाप नहीं लगेगा क्या ?

ब्राह्मणी—प्राणनाथ ! मेरी तरह आप भी तो कई
दिनों से भूखे थे, जैसे आपने अपना हिस्सा देकर अपना
कर्तव्य निभाया है, वैसे ही मेरा हिस्सा देने में संकोच न
करें । यदि अतिथि असन्तुष्ट होकर अपने घर से जायेगा
तो बहुत बड़ा पाप हमें लगेगा ।

पत्नी के प्रेम भरे आग्रह को सम्मान देकर ब्राह्मण ने
पत्नी का हिस्सा भी उस अतिथि को दे दिया । अतिथि
उसे भी खा गया, पर उसका पेट नहीं भरा । उस अतिथि
ने पुनः भोजन की याचना की । ब्राह्मण उसकी याचना
को सुनकर अत्यन्त चिन्तित हो उठा । चिन्तातुर पिता को
देखकर पुत्र ने सनम्र पिता से प्रार्थना की—पिताश्री !
आप किञ्चित् मात्र भी चिन्तित न हों, और मेरा हिस्सा
अतिथि को प्रदान कर उसे सन्तुष्ट कीजिए । वृद्ध माता-
पिता भूखे रहें और मैं नौजवान पुत्र भोजन करूँ, यह कहाँ

का न्याय है ? अतः आप बिना संकोच के मेरा हिस्सा अतिथि देव को दे दीजिए ।

ब्राह्मण—पुत्र ! मैं तुम्हें भूख से आकुल-व्याकुल कैसे देख सकता हूँ ? मैंने तो दीर्घकाल तक तपस्या कर रखी है, परं तू तो फूल की तरह कोमल है । तू भूख को सहन नहीं कर सकता अतः पिता होने के नाते मैं तेरा हिस्सा अतिथि को किस प्रकार दे सकता हूँ ।

पुत्र—पूज्यवर ! पुत्र होने के नाते मैं भी आपका ही अंश हूँ, इस सत्त् पर मेरा नहीं आपका ही अधिकार है, अतः आप सहर्ष इसे दे दीजिए ।

ब्राह्मण ने पुत्र के अत्यधिक आग्रह से पुत्र का हिस्सा भी उस अतिथि को दे दिया । पुत्र के हिस्से को खाकर भी अतिथि की भूख शान्त न हुई । वह और भी भोजन माँगने लगा । ब्राह्मण पहले से भी अधिक चिन्तित हो गया । पुत्रवधू ने जब यह स्थिति देखी तो उसने नम्र निवेदन करते हुए कहा—पूज्यवर ! जब आप सभी ने अपना-अपना हिस्सा अतिथि देव को दे दिया है, तो मुझे भी खाने का क्या अधिकार है ? आपकी मेरा हिस्सा भी अतिथि को दे दीजिए । अतिथि को सन्तुष्ट करना जैसे आप सभी का कर्तव्य था वैसे मेरा भी कर्तव्य है ।

ब्राह्मण—पुत्री ! तुम्हारा शरीर पहले से ही भूख-

प्यास से सूखकर काँटा हो गया है, अब वह अधिक भूख को सहन करने में समर्थ नहीं है, अतः तुम अपना हिस्सा खाकर अपनी भूख शान्त करो, अतिथि देव के लिए मैं अन्य कोई प्रबन्ध करने का सोचूँगा ।

पुत्रवधू—पूज्यवर ! अतिथि को खिलाने में जो आपको अपूर्व आनन्द आयेगा, उस आनन्द से आप मुझे वंचित न करें ।

ब्राह्मण ने पुत्रवधू के प्रेम भरे आग्रह से उसका हिस्सा भी अतिथि को दे दिया । उच्छ्वृत्तिधारी ब्राह्मण के परिवार की अपूर्व त्यागवृत्ति को देखकर अतिथि गद्गद हो गया । उसके हृत्तंत्री के तार झनझना उठे—हे धर्मात्मन् ! तुम्हारे न्यायोपाजित दान से मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ । तुम्हारा धैर्य अपूर्व है । तुमने सेर भर सत्तू देकर जितना पुण्य अर्जित किया है, उस पुण्य का शतांशवाँ हिस्सा भी राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ करके भी प्राप्त नहीं किया जा सकता । उस समय मैं वहाँ पहुँच गया और उस अतिथि के झूठन में लोटने से तथा उन अन्न कणों को खाने से मेरा आधा शरीर सोने का हो गया । शेष आधे शरीर को स्वर्ण मय बनाने के लिए मैं अनेक तपोवनों में, यज्ञशालाओं में गया पर मेरी मनोकामना पूर्ण न हुई । जब मैंने धर्मराज के द्वारा यज्ञ की बात सुनी तो अत्यधिक प्रसन्नता हुई, किन्तु यहाँ आकर के भी मुझे निराशा ही हुई । मेरी अभिलाषा पूर्ण न हो सकी, अतः मैंने कहा कि इस अश्वमेध

यज्ञ का फल उस उच्छ्रवृत्तिधारी ब्राह्मण के सेर भर सत्तू के दान के बराबर भी नहीं है, अतः धर्मराज आप ही गहराई से चिन्तन कोजिए, इसमें मैंने मिथ्या क्या कहा है।

न्योले की बात का उत्तर धर्मराज के पास नहीं था। उनका मिथ्या अहंकार बर्फ की डली की तरह गल चुका था। वे आँख मूँदकर सोच रहे थे, अन्तर्निरीक्षण कर रहे थे। ज्यों ही उन्होंने आँख खोली, न्योला वहाँ से गायब था।

भाव तपस्वी : कूरगडुक

हर संस्कारी मनुष्य संयम ग्रहण करता है और प्रत्येक संयमधारी संस्कारी होता है—एक ही बात है; कहने-समझने का ही भेद है, दोनों में। लेकिन प्रतिबोधित होने का कोई-न-कोई निमित्त अवश्य होता है। कोई जरा-मृत्यु से भयभीत स्वयं ही प्रतिबोधित होता है और संसार त्यागकर साधु बन जाता है। कोई किसी घटना से प्रभावित हो प्रतिबोधित होता है और कोई किसी ज्ञानी गुरु के उद्बोधन से अपनी वैराग्य भावना को जगा लेता है।

श्रावण का महीना। सवेरे से मूसलाधार वर्षा हो रही है। अब दोपहर को आकाश निरभ्र है। चारों तरफ धूप फैली है। धूप के कारण हरियाली खिल उठी है—हरियाली की गहराई कम हो गई है और उसमें हरेपन की चमक आ गई है। चारों तरफ हरा-ही-हरा दिखाई देता है। श्रावण का महीना और उसकी हरियाली ऐसी प्रभावी होती है कि सावन के अन्धे को हरा-ही-हरा दीखता है।

यों सावन में और भी चीजें होती हैं, पर सावन के अन्धे की आँखों में हरियाली इस सोमा तक समा जाती है अथवा छा जाती है कि उसके देखे हुए सब दृश्य हरियाली से ढक जाते हैं और उसे अपनी देखी हुई पूर्वस्मृति में हरा-ही-हरा दीखता है ।

विशालानगरी का राजकुमार महल की छत पर बैठा इन्हीं विचारों में लीन था कि आकाश में काले-भूरे बादल घिर आये । क्षण-भर में ही अँधेरा हो गया और फिर पानी बरसने लगा । दो घण्टे खूब पानी बरसा, फिर अपराह्न का अस्ताचलगामी सूर्य बादल की ओट से झाँकने लगा और खुले नीले आकाश में इन्द्रधनुष अपनी सतरंगी आभा से सबका मन मोह रहा था । विशालानगरी का राजकुमार आसमान की ओर देखता हुआ सोच रहा था— 'इन बादलों का अस्तित्व कितना अस्थिर है ? ये बादल हवा के एक झोंके से ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं । अभी-अभी एक भूरे बादल ने सूरज को ढक लिया था, और क्षण-भर में ही हट गया—कभी यहाँ, कभी वहाँ । टिकना तो ये जानते ही नहीं । घड़ी भर पहले पूरा आकाश काले-सफेद बादलों ने ढक लिया था और इस वसुन्धरा को जलमग्न करके जाने कहाँ चले गये सब-के-सब ? इस मनुष्य-जीवन का अस्तित्व भी क्या इन बादलों जैसा क्षण-भंगुर और अस्थिर नहीं है ? पिताजी मुझे राजमुकुट देना चाहते हैं, पर क्या मेरे जीवन की सार्थकता राजा बनकर

शासन करने में ही है ?.....अभी कल की ही तो बात है, जब सिरदर्द से मैं परेशान हो गया था ? पिताजी मनौतियाँ मना रहे थे.....'मेरे बेटे को कुछ न हो.....मैं अब बूढ़ा हो चला हूँ । मेरे बाद शासन कौन सँभालेगा ?' पर क्या मैं दर्द से बच गया ? मौत का क्या भरोसा कब आ जाए.....नहीं-नहीं—मैं राजमुकुट धारण नहीं करूँगा ।' सोचते-सोचते राजकुमार का मन वैराग्य से भर गया । उसका भाग्य प्रबल था कि विशालानगरी के राजोद्यान में एक आचार्य अपने शिष्यों-सहित चातुर्मास बिता रहे थे । प्रतिबोधित राजकुमार शीघ्र ही गुरु के पास पहुँचा और हर्षोल्लास के साथ संयम ग्रहण कर लिया ।

×

×

×

विशालानगरी का राजकुमार सब साधुओं के साथ संयमित जीवन व्यतीत कर रहा है । राजसी सुखों का अभाव अब उसे नहीं सताता । भोजन के स्वाद पर भी उसने विजय पा ली है । भोजन में नमक हो या न हो, रुखा-सूखा कैसा ही हो—बड़े प्रसन्न मन से वह भूख मिटा लेता है, पर भोजन बिना वह एक दिन भी नहीं रह सकता । एक दिन तो अलग—घण्टे-दो-घण्टे का विलम्ब भी उसे अखर जाता है । यह उसकी मजबूरी है, विवशता है, पर करे क्या ? सोचता है—'हमारे संघ में चार-चार माम तक निराहार रहने वाले साधु भी हैं । अष्टमी, षतुर्दशी का व्रत तो सभी कर लेते हैं, पर मेरी भूख तो

मुझे कुछ भी नहीं करने देती। जब तक पेट में कुछ पड़ न जाए—जप-तप कुछ नहीं होता। नगर का एक ग्वाला जब अपनी गायों को पेड़ के नीचे बैठाकर दोपहर का भोजन करता था तो कहा करता था—‘भूखे भजन न होय गुपाला, ले लो अपनी कण्ठी माला।’ क्या उसी का कहना ठीक था? बचपन में मैं सोचा करता था—खाना खाने के लिए ग्वाले ने एक तुकबन्दी बना ली है। बिना अनशन के सिद्धि कैसे मिलेगी?’

एक दिन मुनि राजकुमार ने गुरु से पूछ ही लिया—

“गुरुदेव ! न जाने किन कर्मों का उदय हुआ है कि मैं भूख बर्दाश्त नहीं कर सकता ? प्रभो ! मुझे सिद्धि कैसे मिलेगी ? बिना व्रत-उपवास-अनशन के मैं कैसे साधना कर पाऊँगा ?”

नवदीक्षित राजकुमार के कथन पर मृदु मुस्कान के साथ गुरु ने समझाया—

“वत्स ! चिन्ता मत करो। तुम भाव-तपस्वी हो, कर्म-तपस्वी नहीं हो तो क्या ? अनशन-व्रत के अलावा भी तप के अनेक रूप हैं। तुम उन्हीं की साधना करो। क्षमा, सन्तोष, स्वाध्याय, ध्यान आदि तप के इन रूपों में यदि तुम एक क्षमा की ही आराधना करो तो सिद्धि तुम्हारे चरण चूमेगी।”

शिष्य आश्चस्त हो गया। अब संशयहीन होकर

वह भोजन करता और साथ ही क्षमा का अभ्यास भी करता जाता ।

पुराने समय में 'गडुक' एक माप चलता था । एक गडुक भरकर भात खाने पर ही उसे तृप्ति मिलती । 'कूर' भात का पर्याय है । इस प्रकार गडुक भरकर भात या कूर खाने के कारण उस साधु का नाम 'कूरगडुक' पड़ गया । संघ के सभी साधु विशालानगरी के नवदोक्षित राजकुमार को मुनि कूरगडुक कहकर ही पुकारते । नित्य भोजन करने के कारण कूरगडुक सभी साधुओं के लिए हेय और उपेक्षित था । प्रायः उसे धिक्कार मिला करती । 'नित्यभोजी' और 'भोजनभट्ट' कहकर सभी साधु कूरगडुक का मजाक उड़ाया करते थे, पर उसने क्रोध को जीत लिया था—क्षमा का आराधक था वह नित्यभोजी साधक । निन्दा-स्तुति में उसके लिए कोई भेद नहीं था ।

प्रारम्भ के दिनों में कूरगडुक को अपना उपहास अखरा । पर तभी गुरु का उद्बोधन याद आया—'फिर भी उसे अपना मजाक अच्छा नहीं लगा । कूरगडुक ने विचार किया—'बचपन में मैं अपने साथियों के साथ खेला करता था । साथी लोग मेरी तरफ जीभ निकालते थे, मुँह मटकाते थे और तरह-तरह से मुझे चिढ़ाते थे । मैं माँ से कहता तो माँ मुझे समझाती—बेटे तू क्यों चिढ़ता है, उनके जीभ निकालने और मुँह मटकाने का तुझ पर क्या असर ? मुँह उनका, जीभ उनकी—वे उसे तोड़े-मरोड़ें,

मटकायें—तुझे क्या ? तब माँ की बात मेरी समझ में नहीं आती थी । जब मैं बड़ा हो गया तो मुझे स्वयं अपने चिढ़ने की बात याद करके हँसी आने लगी । और बचपन में ही माँ मेरी स्तुति करके अपना काम बना लेती थी । कहती थी—मेरा बेटा कितना अच्छा है, सब बातें मान लेता है, मेरे कहने से दूध भी पी लेता है । और मैं माँ की स्तुति से प्रभावित होकर झट दूध पी लेता था । तब निन्दा-स्तुति मुझे दोनों प्रभावित करती थीं, और अब वही घटनाएं मुझ कितनी हास्यास्पद लगती हैं । एक साधक के रूप में भी मैं अभी बालक ही तो हूँ, इसीलिए बचपन के साथियों की तरह संघ के साधुओं का मजाक मुझे अखरता है ।'

इस तरह स्वचिन्तन से मुनि कूरगडुक ने निन्दा-स्तुति दोनों पर विजय पा ली । न स्तुति से उसे सुख मिलता और न निन्दा से दुःख होता । क्षमा का आराधक मुनि कूरगडुक सचमुच क्षमा का आगार ही था ।

×

×

×

एक बार गुरु ने अपने संघ सहित विहार किया और चम्पानगरी पहुँचे । नित्य की तरह आज भा कूरगडुक ने भिक्षापात्र से भोजन निकालकर भोजन किया । संघ में एक मास से चार मास तक का व्रत करने वाले चार साधु थे । उन्हें कूरगडुक की भोजन-लिप्सा बहुत अखरती थी ।

वे चारों साधु कूरगडुक को लक्ष्य करके आपस में कह रहे थे—

“कैसा भोजनभट्ट है ? भिक्षा लाते ही भिक्षापात्र लेकर बैठ जाता है । घड़ी-भर का भी सन्तोष नहीं कर पाता । वड़ा पेट है ।”

दूसरा साधु कहता—

“यदि भोजन के बिना एक पहर भी नहीं रुका जाता तो संयम लेने की क्या आवश्यकता थी ?”

तीसरे ने व्यंग्य किया—

“ऐसे भोजनभट्ट और असंयमी साधु ही तो संघ को बदनाम करते हैं ?”

चौथे ने अफसोस जाहिर किया—

“अरे भाई ! ऐसा भी क्या भोजनभट्ट ? अष्टमी-चतुर्दशी का व्रत तो गृहस्थ लोग भी कर लेते हैं ।”

साधुओं की इस उपहास-वार्त्ता को सुनकर भी कूरगडुक शान्त था, समभाव में लीन था । कूरगडुक सोच रहा था—‘साधु ठीक ही तो कहते हैं । मैं वास्तव में ही तो भोजनभट्ट हूँ । भोजन बिना तनिक भी नहीं रहा जाता । मैं कैसा साधु हूँ !’

एक कोने में सबसे अलग कूरगडुक बैठा था । तभी शासन देवी ने उसकी वन्दना की और भक्तिभावपूर्वक

भूरि-भूरि प्रशंसा की। पर इस भाव तपस्वी कूरगडुक के लिए शासन देवी की स्तुति और साधुओं की निन्दा में कोई अन्तर नहीं था।

शासन देवी के इस अनहोने-से लगने वाले व्यवहार को देखकर साधुओं ने कहा—

“देवी ! आज आप कैसे भ्रम में पड़ गईं ? इतने संयमी और उग्र तपस्वी साधुओं को छोड़कर आप एक भोजन-लिप्सी साधु की वन्दना करने लग गईं ?”

शासन देवी ने मुस्कराकर कहा—

“भन्ते ! मैं भ्रम में नहीं हूँ, बल्कि आप सबका भ्रम दूर करने आई हूँ। यह साधु आप सबमें श्रेष्ठ और घोर तपस्वी है। क्षमा का ऐसा साधक दूसरा नहीं है। इसके सभी कर्मों का क्षय हो चुका है। देखना, आज से सातवें दिन इसे केवलज्ञान प्राप्त होगा।”

अपनी बात कहकर शासन देवी अन्तर्धान हो गई और साधुजन शंका-आशंका, विश्वास-अविश्वास के झूले में झूलने लगे—

“इस नित्यभोजी को केवलज्ञान ?” वे शासन देवी की भूल का नाम लेकर सचमुच अपनी ही भूल पर मुस्कराने लगे।

×

×

×

सातवें दिन। यह दिन पर्व का दिन था। सभी साधुओं ने उपवास रखा था। उपवास रखने में असमर्थ साधु भी

पर्व के दिन तो उपवास रखते ही थे । मात्र एक कूरगडुक आज भी इस सामान्य नियम का अपवाद था । सदैव की तरह आज भी उसने गुरु की आज्ञा ली और भिक्षा के लिए चल दिया । भिक्षा प्राप्त करके भिक्षापात्र लेकर खाने बैठ गया और शिष्टाचार का निर्वाह करते हुए उसने उपस्थित साधुओं से पूछा—

“भन्ते ! आप में से जिसको जो आवश्यकता हो ले लीजिए और मुझे अनुगृहीत कीजिए—साहू हुज्जामि तारिओ ।”

कूरगडुक का यह निवेदन बहुत ही सरल, सहज और स्वाभाविक था । पर एक साधु उसके इस कथन पर बहुत ही क्रुद्ध हो गया—

“दुष्ट पामर ! आज पर्व के दिन भी तू बिना खाये नहीं रह सका ? जानता है कि आज छोटे-वड़े सभी साधु उपवासी हैं । फिर भी तू सबको भोजन दिखा रहा है । अरे पतित ! लानत है तेरे खाने पर ।”

यह कहकर उस क्रुद्ध साधु ने ‘थू-थू’ करके ऐसा थूका कि थूक कूरगडुक के भोजन पर गिर पड़ा । पर वाह रे, क्षमा के साधक कूरगडुक ! कूरगडुक ने क्रुद्ध साधु के चरण छुए और भोजन लेकर एकान्त में चला गया और अपने को धिक्कारने लगा—

“मैं वास्तव में पतित हूँ । साधना-पथ का राही बनकर

भी आज पर्व के दिन भी उपवास नहीं रख सका। मुझे धिक्कार है। धन्य हैं वे साधक जो चार-चार मास तक निराहार रहकर साधना करते हैं। मैं सचमुच कायर हूँ, भीरु हूँ.....।’

कूरगडुक विचारों की ऊँची और ऊँची—उच्चतम भूमि पर चढ़ता गया। धर्मध्यान में लीन साधु कूरगडुक शुक्लध्यान में पहुँच गया। क्रोध, अहंकार आदि सभी कषाय भस्मीभूत हो गए। उसे आत्मदर्शन हुआ। शान्ति और निर्मलता की लहरें उठीं। केवलज्ञान का दिव्यालोक भीतर-बाहर जगमग करने लगा।

देवताओं ने दुन्दुभिनाद किया और केवलज्ञानी मुनि कूरगडुक के जयघोष से धरा-आकाश—दोनों गूँज उठे।

×

×

×

अपने उग्र तप, अनशन व्रत का अहंकार करने वाले तथा नित्यभोजी, पेटू, भोजनभट्ट कहकर कूरगडुक का मजाक उड़ाने वाले सभी साधु—केवलज्ञानी मुनि कूरगडुक के सम्मुख श्रद्धा से नत हो गए।



क्षमा और क्रोध का द्वन्द्व

[मुनि स्कन्दकुमार]

लाखों वर्ष पूर्व जितशत्रु श्रावस्ती नगरी का प्रजा-वत्सल और धर्मनारायण शासक था। धर्मसंगिनी राज-महिषी धारिणी की कोख से उत्पन्न राजा जितशत्रु के स्कन्दकुमार नाम का एक पुत्र और पुरन्दरयशा नाम की एक पुत्री थी। पुरन्दरयशा स्कन्दकुमार से बड़ी थी। दोनों बहन-भाइयों में बहुत प्रेम था। विवाह योग्य होने पर राजा जितशत्रु ने राजकुमारी पुरन्दरयशा का विवाह कुम्भकारकटक नगर के राजा दण्डक से कर दिया।

कुम्भकारकटक का राजा स्वयं तो धर्म-प्रेमी शासक था, लेकिन उसका पुरोहित पालक घोर नास्तिक, दम्भो और साधु-महात्माओं का विरोधी था। एक बार राजा दण्डक ने पुरोहित पालक को श्रावस्ती नगरी—अपनी सुसराल भेजा। राजा जितशत्रु का दरवार लगा था। जैन-तत्त्वों का मर्मज्ञ महान धर्मात्मा राजकुमार स्कन्द भी दरवार में उपस्थित था। दरवार में धर्म-वर्चा हो रही

थी। स्वभाव से ही जन्मजात नास्तिक और दम्भी पुरोहित पालक ने धर्म-सिद्धान्तों पर प्रहार किये और अपने नास्तिक मत का प्रतिपादन किया। स्कन्दकुमार ने पालक के सभी तर्कों को धज्जियाँ उड़ा दीं। पालक को नास्तिकता का खण्डन कर धर्म का मण्डन किया। अधर्म पर धर्म को विजय से दरवार हर्षध्वनि से गूँज उठा। पाप-बुद्धि पालक अपनी इस हार से तिलमिला उठा। प्रतिशोध की आग में जलने लगा। स्कन्दकुमार के प्रति उसका क्रोध वैर में बदल गया। पालक अपने भावों को छिपा गया और कुमार स्कन्द से बदला लेने की गाँठ बाँध ली। अवसर की तलाश में रहने लगा। सच ही है, जाँक गाय के थन से भी रक्त ही पीती है। पालक पुरोहित जितशत्रु की धर्मसभा से भी शत्रुता का बीज लेकर आया था। लौटकर पालक ने विचार किया, 'स्कन्दकुमार पुरन्दरयशा का भाई और राजा दण्डक का साला है। इन दोनों को उसका विरोधी कैसे बनाया जा सकता है? लेकिन युक्ति और विचार-पूर्वक योजना बनाने से सब सम्भव है। अवसर आने पर बहनोई दण्डक के द्वारा ही उसके साले स्कन्दकुमार का धर्माहंकार चूर-चूर करूँगा।' यह विचार पालक के मन में पलता रहा।

एक बार भगवान् मुनिसुब्रत स्वामी विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी में पधारे। नगरवासी तथा राजसमाज—सभी भक्तिभावपूर्वक उनकी देशना सुनते एकत्र हुए।

प्रभु ने संसार की अनित्यता और आत्मा की नित्यता का ऐसा मनोहारी प्रवचन दिया कि श्रोता मुग्ध हो गए। स्कन्दकुमार को तो तत्काल ही वैराग्य हो गया। उसने पाँच सौ राजपुत्रों के साथ मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

स्कन्दकुमार अध्ययन-मनन और आत्म-साधना में लग गये। धर्मतत्त्वों के मर्मज्ञ और तपःपूत मुनि स्कन्द को भगवान् सुव्रत स्वामी ने पाँच सौ साधुओं का आचार्य बना दिया।

एक वार मुनि स्कन्दाचार्य ने भगवान् सुव्रतस्वामी से निवेदन किया-

“भगवन् ! कुम्भकारकटक नगर के शासक नरपाल दण्डक गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध से मेरे बहनोई तथा उनकी धर्मपत्नी पुरन्दरयशा मेरी बड़ी बहन है। यदि आपकी अनुज्ञा हो तो मैं राजा-प्रजा को प्रतिबोध देने राजा दण्डक के नगर को प्रस्थान करूँ।”

मुनि स्कन्दकुमार का यह परोपकारी विचार सुनकर सुव्रत स्वामी विचार में पड़ गये। उन्होंने अपने शिष्य स्कन्दाचार्य से कहा—

“वत्स ! तुम्हारा विचार तो ठीक है, लेकिन....।” कुछ रुककर पुनः बोले—“वहाँ तुम सभी पर प्राणघातक उपसर्ग होंगे।”

अपनी जिज्ञासा को खोलते हुए स्कन्दमुनि ने पुनः

भगवान से पूछा—

“प्रभो ! मैं उन प्राणघातक उपसर्गों में भी आराधक रहूँगा या विराधक हो जाऊँगा ?”

भगवान ने बताया—“तुम्हें छोड़कर सभी मुनि आराधक होंगे ।”

स्कन्द आचार्य ने प्रसन्नता के आवेग में कहा—

“भगवन् ! फिर तो मुझे अवश्य जाने दीजिए । मेरे जाने से पाँच सौ साधु आराधक बनें । मेरे लिए यही सब कुछ है । आप आज्ञा दीजिए ।”

मुनिसुव्रत स्वामी ने अपने शिष्य स्कन्दाचार्य को पाँच सौ मुनियों सहित विहार करने की आज्ञा दे दी ।

स्कन्दाचार्य राजा दण्डक के नगर कुम्भकारकटक में पाँच सौ साधुओं सहित पहुँचे । दुष्टात्मा पुरोहित पालक को जब यह मालूम हुआ कि स्कन्दाचार्य पाँच सौ साधुओं सहित नगर में आ रहे हैं तो उसने अपना पुराना बदला लेने की योजना बनाई । साँप दूध पीकर भी जहर उगलता है । गाय घास खाकर भी दूध देती है । दुर्जन और सज्जन के स्वभाव में यही अन्तर है । स्कन्दाचार्य के आगमन से पूर्व ही पुरोहित पालक ने राजवाटिका में अस्त्र-शस्त्र छिपा दिये । कुछ शस्त्र पेड़ों के झुरमुट, पत्तों, झाड़ियों में छिपा दिये, और कुछ को जमीन खोदकर गड़वा दिया । मुनि स्कन्दाचार्य पाँच सौ साधुओं सहित राजोद्यान में ठहरे ।

मुनि स्कन्दाचार्य की देशना सुनने, उनके दर्शन करने

राजा दण्डक राजमहिषी पुरन्दरयशा तथा राजपुरुषों सहित आया। नगर के स्त्री पुरुष भी आये। आचार्य ने स्थायी सुख की प्राप्ति हेतु आत्मतत्त्व का मर्म बताया। कष्टों और क्लेशों से मुक्ति का उपाय बताया। उनका धर्मोपदेश सुनकर सभी आनन्दित हुए।

रात्रि को एकान्त पाकर पालक ने राजा दण्डक के कान भरे—

“महाराज ! आपके गृहस्थधर्म के नाते ये मुनि स्कन्द आपके साले हैं और अब पूरे साज और सेना……” इतना कहकर अपना रंग पक्का करने की दृष्टि से धूर्त पालक चुप हो गया। राजा ने उसे खुलकर बात कहने के लिए उकसाया—“हाँ, कहां-कहां, रुक क्यों गए ? जो कुछ कहना है, निश्चक भाव से कहो।” धूर्त पुरोहित फिर बोला—

“महाराज ! राजनीति में राजा न किसी का शत्रु होता है, न मित्र। यह स्कन्द मुनि-वेश में रंगा सियार है। साधु होने से पहले यह राजपुत्र है। साधु बनकर बहनोई का राज्य हड़पने की इसने योजना बनाई है। इसके साथ पाँच सौ साधु मात्र साधु ही नहीं, वरन् रण बाँकुरे सैनिक हैं। अवसर पाकर सशस्त्र क्रान्ति करके आपका राज्य हड़पने की इसकी योजना है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं इसका परदाफाश करने का उद्योग करूँ ?”

राजा चिन्ता में पड़ गया और बोला—

“राजा का निजी हित पीछे है, साम्राज्य और देश का हित पहले है। यदि यह सत्य है तो मेरे लिए साला और पत्नी कुछ भी नहीं हैं। तुम षड़यन्त्र का पता लगाओ। ऐसा न हो कि विलम्ब होने पर जो न होना चाहिए, वह हो जाए।”

पुरोहित बोला—

“महाराज ! आप स्कन्दमुनि को पाँच सौ साधुओं सहित उत्तर दिशा में स्थित उद्यान में ठहरा दीजिए। फिर कुछ राजपुरुषों को साथ लेकर मेरे साथ उस उद्यान में चलिए, जहाँ अब वह ढोंगी मुनि पाँच सौ साधु रूपी सैनिकों के साथ ठहरा है।”

स्कन्दाचार्य को उत्तर दिशा में स्थित राजवाटिका में साधुओं सहित ससम्मान ठहरा दिया गया। राजा दण्डक को लेकर पुरोहित पालक खाली पड़ी राजवाटिका में पहुँचा। इधर-उधर खोज-बीन करते हुए उसने छिपे हुए अस्त्र-शस्त्र राजा को दिखा दिये। राजा का सिर घूम गया। क्रोध से आग-वबूझा हो गया। सच ही तो है, अविवेक का परदा जब आँखों पर पड़ जाता है तो चमकता हुआ सूर्य भी नहीं दिखाई देता—अपना हित-अहित भी नहीं देखता। क्रोधाविष्ट राजा ने पुरोहित को आज्ञा दी—

“पालक ! जो तुम उचित समझो, इस ढोंगी, पाखण्डी मुनि को उसके सभी साथी साधुओं सहित वही दण्ड दो। मेरी ओर से तुम्हें खुली छूट है। बाद में तुम्हें पुरस्कृत भी

क्रिया जाएगा, क्योंकि तुमने ऐन वक्त पर राज्य को वर्धा होने से बचाया है।”

दुष्ट की दुष्टता फल गई। पालक के मन की मुराद पूरी हो गई। तुरन्त उसने राजवाटिका में ही कोल्हू मँगवाया, मनुष्यों को पेलने वाला कोल्हू। जैसा गन्ना पेलने का कोल्हू होता है, उसी तरह का बड़े आकार का कोल्हू उस युग के राजा भयंकर अपराधी को मृत्यु दण्ड देने का लिए रखते थे। चार जल्लादों सहित कोल्हू को राजवाटिका में स्थित कर दिया। पालक को कोल्हू और जल्लादों के साथ देखकर स्कन्दमुनि परिस्थिति की विकृता को भांप गये। आने वाले संकट की आशंका से उन्होंने पूछा—पालक ! यह क्या है ?

पालक ने आँखें तरेर कर कहा—तुम्हारी मौत ! और न सिर्फ तुम्हारी, तुम्हारे इन पाँच सौ ढोंगी पाखण्डी चेलों की भी। बहादुर व्यक्ति अपने अपमान का बदला लेकर ही दम लेता है। आज अपना पुराना हिसाब-किताब चुकता होगा।”

मुनि स्कन्दकुमार ने पालक को समझाया—साधुओं को छेड़ना आग से खेलना है। फिर हमने तो तेरा कुछ बिगाड़ा ही नहीं है, यदि तेरी दुश्मनी भी है तो मुझसे है, इन पाँच सौ साधुओं ने तेरा क्या बिगाड़ा है ?

पर पालक को समझाना भेंस के आगे बिन बजाना सिद्ध हुआ। वह और ज्यादा खिसिया गया और दुष्ट ने

एक-एक करके साधुओं को कोल्हू में पेलना शुरू कर दिया। देखते-देखते राजोद्यान की हरित दूर्वा से आच्छादित भूमि रक्तरंजित और वीभत्सता से युक्त हो गई। आचार्य स्कन्द प्रत्येक साधु को स्व-पर—आत्मा और देह के भेदज्ञान का उपदेश दे रहे थे, प्रत्येक साधु से आलोचना करवा रहे थे और यथोचित प्रायश्चित्त करवाकर प्रत्येक के मन में समाधिभाव उत्पन्न कर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि सिर पर कफन बाँधे प्रत्येक साधु ने कोल्हू में पिलने से पहले शरीर-मोह—ममत्व का पूर्णतः त्याग कर दिया। हरेक के मन में यही विचार था कि इसमें जल्लादों, उन्हें आदेश देने वाले पालक का कोई दोष नहीं है। यह सब दोष हमारे पूर्व-कृत कर्मों का है, कर्मों का फल भोगे बिना उनका क्षय कैसे होगा? सभी साधु राग-द्वेष से परे हो गये। अपने घातक के प्रति भी उनमें कृपा और दया का भाव था। सभी मुनियों ने शुक्लध्यान रूपी अग्नि से कर्म रूपी घास-फूस को भस्म किया और क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर कोल्हू में पिलकर उन्होंने केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया।

जब चार सौ निन्यानवे साधु पले जा चुके तो अन्त में एक बालवय का साधु शेष रह गया। पापबुद्धि पालक को उस मुनि पर भी दया नहीं आई। वह उसे कोल्हू में पेलने ज्यों ही उद्यत हुआ कि धीर-गम्भीर स्कन्दाचार्य भी विचलित हो गये। पालक को ललकारते हुए बोले—“रे दुष्ट,

पापात्मा ! इतनी जघन्य हिंसा से भी तेरा पेट नहीं भरा ।
ले पहले मुझे ही अपनी हिंसा का ग्रास बना, बाद में इस
दुधमुँहे साधु को पेलना ।” दुष्ट ने स्कन्दमुनि की बात पर
कोई ध्यान दिये बिना ही उस अन्तिम और सुकुमार
वैरागी को कोल्हू में पेल दिया ।

स्कन्दाचार्य के क्रोध का ठिकाना न रहा । वे आपे से
बाहर हो गये । क्रोध से उनका चेहरा लाल पड़ गया ।
क्रोधाग्नि ने उनके संयम गुणों का स्वाहा कर दिया । क्रोधा-
वेश में पालक से बोले—

“रे दुष्ट पालक, सुन ! मैं तुझ दुरात्मा को, अन्धे और
अधर्मी राजा दण्डक को और अपनी आँखों से सब कुछ
देखने वाली निर्दय प्रजा को इस दुष्टता का मजा चखाऊँगा ।
मेरे तप-संयम का फल मुझे यही मिले कि मैं तेरा, तेरे
राजा और तेरे नगर का विध्वंस करने वाला बनूँ ।”

पालक पर कुछ भी असर नहीं हुआ । मुनि स्कन्द-
कुमार की चेतावनी पर दंत्य की तरह क्रूरतापूर्वक हँसता
हुआ आगे बढ़ा, और अपने हाथ से ही मुनि को पकड़कर
काल्हू में यों डाल दिया जैसे गन्ने को डाल दिया जाता
है । आज उसकी वर्षों की दुरिच्छा पूरी हो गई । यह
जघन्य घोरतम पाप करके वह पाँच सौ साधुओं की हड्डियों
के ढेर को देखकर, उनके गर्म रक्त की धारा का स्पर्श
करके राक्षस की भाँति उन्मत्त होकर नाच उठा ।

×

×

×

आचार्य स्कन्द के खून से लथपथ उनका रजोहरण एक ओर पड़ा था। एक गीध ने उसे माँस का टुकड़ा समझ कर अपनी चोंच में उठा लिया और लेकर उड़ गया। अक्समात वह रजोहरण रानी पुरन्दरयशा के महलों में गिरा। उसने अपने भाई का खून से सना रजोहरण देखा तो स्तम्भित रह गई। क्षण-भर तो वह कुछ भी नहीं समझ पाई। फिर उसे चेतना लौटी, भाई के रजोहरण से आधार पर उसने मुनियों के कुशल-क्षेम का पता लगाया तो अपने भाई के वध तथा पाँच सौ मुनियों के निर्दयतापूर्वक कोल्हू में पेले जाने का हृदय द्रावक समाचार मिला। इस दुष्कृत्य की नगर भर में हलचल थी। रानी पुरन्दरयशा अपने भाई की याद में फूट-फूट कर रोने लगी। उसके पति के अज्ञान से उसके वंश में कितना बड़ा पाप हुआ था। रानी पुरन्दरयशा चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी—“अरे दुष्टो ! सात पीढ़ी तक भी इस मुनिहत्या के पाप से तुम हत्यारों का छुटकारा नहीं होगा।” क्रोध, दुःख और परिताप के आवेग में रानी ने निश्चय किया कि अब मैं ऐसे पापपूर्ण राज्य और इस संसार में नहीं रहूँगी। उसके मन में वैराग्य हुआ और वह सपरिवार मुनिमुत्रत स्वामी की शरण में गई और आत्मसाधना में लीन हो गई।

आचार्य स्कन्द ने क्रोध में भान भूलकर जो नियाणा—निदान दुस्संकल्प किया, उसके फलस्वरूप वे अपने दूसरे जन्म में अग्निकुमारनिकाय के देव बने। उन्होंने—अग्नि-

कुमार निकाय के देव ने अवधिज्ञान से कुम्भकारकटक नगर को देखा। पाँच सौ साधुओं की हड्डियों के ढेर को और बहती हुई खून की नदियों को देखा तो उनका खून खौल उठा। विकराल रूप बनाकर वे आकाश में खड़े हो पापी पालक को ललकारने लगे—दुष्ट पालक ! अधम राजा दण्डक ! तुमने जो घोरातिघोर अन्याय किया है, भयंकर पाप किया है, उसका फल भुगतने को तैयार हो जाओ। और क्रोधांध अग्निकुमार देव ने धधकते अंगारों की वर्षा शुद्ध की। देखते-देखते समूचा शहर होली की तरह जल उठा। एक पापी के पाप ने लाखों निरपराध जीवों को मौत के घाट उतार दिया।

कहते हैं तभी से वह भू-भाग दण्डक वन या दण्ड-कारण्य कहलाने लगा।

पाँच सौ श्रमणों ने क्षमा एवं सहिष्णुता धारण कर मोक्ष प्राप्त किया तो मुनि स्कन्द ने क्रोध के कारण विराधक पद पाया एवं पालक ने द्वेष तथा क्रोध के वश हो पूरे नगर को अग्निज्वालाओं में भस्म करवा दिया।

—उपदेशमाला

दमसार—शम-सार

बड़ी-बड़ी मनौतियों, अनुष्ठानों और बड़ी आयु में कृतांगनगरी के राजा सिंहरथ को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। महारानी सुनन्दा की गोद भर गई और नगर को युवराज की प्राप्ति हो गई।

राजकुमार का नाम रखा गया दमसार। कहावत है—

कुल सपूत जान्यो परे, लखि सुभ लच्छन गात।

होनहार विरवान के, होत चीरने पात ॥

राजकुमार दमसार मेधावी और प्रतिभावान था। शीघ्र ही वह सभी विद्या-कलाओं में पारंगत हो गया। होनहार और सपूत पुत्र को पाकर कोन पिता हर्षित न हागा। दमसार विवाह-योग्य हुआ तो राजा सिंहरथ ने राजकन्याओं का निरोक्षण करना शुरू कर दिया।

×

×

×

राजकुमार दमसार में वैराग्य का बीज था। जब उसने वीर प्रभु की अमृत वाणी सुनी तो उनके वचनों के सुधा-वारि से उसका वैराग्य बीज अंकुरित हो गया और

प्रतिबोधित राजकुमार दमसार ने प्रव्रजित होने का दृढ़ संकल्प कर लिया ।

राजा सिंहरथ और महारानी सुनन्दा ने सुना तो मोह से विह्वल हो गये । पिता ने पुत्र से कहा—

“पुत्र ! इस राजसिंहासन की परम्परा क्या यों ही त्याग दोगे ? तुम्हारी तरह यदि मैं भी पिता का राज्य न लेता, मेरे पिता अपने पिता का राज्य न लेते तो यह राजसिंहासन कभी का समाप्त हो जाता । मेरा राजसिंहासन ही क्यों, यदि सभी लोग शासन की परम्परा छोड़ देते और संयम ग्रहण करते तो आज न कोई राजा होता, न राज्य और फिर यह प्रजा भी क्यों होती ?”

दमसार यह जानता था कि पिताजी मुझे संयम ग्रहण करने से रोकेंगे और पिता की अनुमति बिना वीरप्रभु दीक्षा नहीं देंगे । अतः दमसार ने विवेकयुक्त वचन कहे—

“पिताजी ! आप राजा न होते, मेरे पितामह राजा न होते, तो भी संसार अपनी उसी गति से चलता, जिस गति से आज चल रहा है । क्या राजा बनकर राज्य करने का सुख स्थायी है ? पिताजी ! क्या राजा कभी बूढ़ा नहीं होता या उसे मृत्यु का भय नहीं होता ? यदि भगवान महावीर राज्य का त्याग न करते तो इस विश्व का कल्याण कौन करता ? यह संसार दोनों के लिए है—भौतिक सुख भोगने वालों के लिए भी और आत्म-कल्याण करने वालों के लिए भी; जो जिसमें सुख मानें, वह वही करे ।

“पिताजी ! यह छोटा-सा राज्य त्यागकर आपका पुत्र यदि मुनि बनकर विश्व का स्वामित्व प्राप्त करे तो क्या यह आपके लिए कम गौरव की बात होगी ? आपका उत्तराधिकार प्राप्त करके अपने वंश का नाम मैं शायद इतना उज्ज्वल न कर पाऊँगा, जितना कि संयम ग्रहण करके कर पाऊँगा ।”

“पिताजी ! आप मुझे वीरप्रभु की शरण में जाने की अनुमति दीजिए ।”

राजा की किसी युक्ति ने काम नहीं दिया और अन्ततः महाराज सिंहरथ ने राजकुमार दमसार को प्रव्रजित होने की अनुमति दे दी ।

×

×

×

मुनि दमसार साधना में जुट गए । शास्त्रों का अध्ययन, जप-तप, ध्यान आदि में वे बहुत आगे बढ़ गए । संयम और चारित्र्य की उत्कट साधना से वे बहुत ऊँचे उठ गए । तपस्या ही उनका लक्ष्य था और एक दिन वीरप्रभु के समक्ष मुनि दमसार ने यावज्जीवन मासक्षमण तप करते रहने का संकल्प ले लिया । इस कठोर अभिग्रह का पालन करते-करते उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया । हड्डियों के ढाँचे पर त्वचा मात्र का आवरण था—रक्त-मांस की बूँद भी मानो शेष नहीं थी ।

अपनी कठोर तपश्चर्या को लक्ष्यकर मुनि दमसार ने

विचार किया—‘इतनी उग्र साधना के बावजूद भी मुझे केवलज्ञान प्राप्त क्यों नहीं हो रहा ? क्या मेरे तप में कहीं कुछ शेष है ? क्या मैं भव्य नहीं हूँ ?’

अपने मन को शंका एक दिन उन्होंने भगवान महावीर के सामने प्रकट की। भगवान महावीर चम्पानगरी के बाहर राजोद्यान में अपनी धर्मसभा को सम्बोधित कर रहे थे। मुनि दमसार की शंका सुनी तो बोले—

“दमसार ! मन में शंका को स्थान मत दो। निश्चय ही तुम भव्य हो। तुम्हें केवलज्ञान की प्राप्ति भी इसी भव में होगी। पर अभी तुम्हारे अन्दर कषाय भाव का प्रावलय है। अग्नि से बीज और अंकुर दोनों ही झुलस जाते हैं। जब तक तुम्हारे अन्तर् में कषयाग्नि रहेगी, केवलज्ञान का कल्पांकुर कैसे उगेगा ? चिन्तन और विवेक की जलधार से इस कषायानल को बुझाओ। याद रखो, क्षमा और उपशम ही श्रमणधर्म का सार है।”

मुनि दमसार ने प्रभु की वाणी सुनी तो कृतकृत्य होकर निवेदन किया—

“प्रभो ! अब मैं कषायानल को प्रशमित करने का ही प्रयत्न करूँगा।” और उन्होंने प्रभु की वाणी मन में धारण कर ली।

×

×

×

जेठ का महीना। मध्याह्न का मार्तण्ड अग्नि बरसा रहा था। हवा का स्पर्श त्वचा को जलाये डाल रहा था।

घरती का रेत इतना तप्त था, चाहो तो चने भून लो। मास क्षमण के पारणे का दिन था। मुनि दमसार के दो प्रहर तो स्वाध्याय व ध्यान में ही बीत गये। अब वे पारणा के लिए भिक्षार्थ चम्पानगरी की ओर चले। थोड़ी ही दूर चले तो चम्पानगरी का एक नागरिक मिल गया। उसने मुनि को देखा तो मन में बड़ा खिन्न हुआ—‘मैं जिस कार्य से जा रहा था, अब वह कार्य नहीं होगा। इस नंगे सिर के मुण्डित साधु ने तो मेरा शकुन ही बिगाड़ दिया।’

मुनि ने सरल भाव से उस नागरिक से पूछा—

“भद्र ! चम्पानगरी का कोई सीधा और जल्दी पहुँचाने वाला रास्ता हो तो बताओ।”

नागरिक तो मुनि से कुछ ही रहा था। उसने सोचा कि इस अपशकुन कर्ता को मजा चखाऊँ। अतः झाँसा देने के विचार से एक ऊबड़-खाबड़ और रेतीले मार्ग की ओर संकेत करते हुए बोला—

“आप इस रास्ते से जाइए। बड़ी जल्दी आप नगर में पहुँच जायेंगे।”

चलते-चलते मुनि परेशान हो गये। रेत में उनके पैर जल उठे। प्यास से कण्ठ सूख गया, पर अभी तक नगर नहीं आया। दूर से उन्हें नगर के मकानों का पिछवाड़ा ही दीखा। मुनि की वेदना असह्य हो गई और उनका

धीरज किनारा कर गया। क्रोधाविष्ट मुनि ने सोचा— 'इस नगरी के लोग बड़े दुष्ट हैं। अकारण ही इस एक नागरिक ने मुझे कष्ट दिया। इनकी दुष्टता का फल इन्हें मिलना ही चाहिए।' यह सोच मुनि 'उत्थान श्रुत' का उद्वेग पैदा करने वाले अंग विशेष का पाठ करने लगे। मन्त्र प्रभाव से नगर के लोगों पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। उन्हें धरती घूमती नजर आने लगी। पुत्र माँ को पुकार रहा था और माँ बेटे को पुकार रही थी। दाह से सबके शरीर जलने लगे। आदमी के ऊपर आदमी गिरने लगा। लोगों की चीख-पुकार से मुनि का क्रोध दया-करुणा में बदल गया—अग्नि जल हो गई और अब उत्थान श्रुत के उद्वेग निवारण करने वाले प्रशमनकारी अंश विशेष का पाठ करने लगे। नगर का कोलाहल शान्त हो गया। सब लोग पूर्ववत् चैन की साँस लेने लगे। मुनि को वीरप्रभु की वाणी का स्मरण हो आया—'कषायानल का प्रशमन'। उन्हें अपने क्रोध पर ग्लानि हुई। याद आया—'क्षमा और उपशम ही तो श्रमणधर्म की विशेषताएँ हैं।'।

मुनि दमसार को अपने क्रोध—कषायानल का इतना पश्चात्ताप हुआ कि आहार लिए बिना ही वे वापस आ गए और मन की वेदना वीरप्रभु के समक्ष प्रकट की। वीरप्रभु ने फिर उद्बोधन दिया—

“दमसार ! जो साधु क्रोध-कषाय को प्रशमित नहीं कर

पाता वह दीर्घ-संसारी होता है। मोक्ष उससे बहुत दूर रहता है। बार-बार उसे इस संसार में आना पड़ता है। इसके विपरीत क्रोध को शान्त करने वाला साधु ही अल्प-संसारी होता है और शीघ्र ही मोक्ष पद को प्राप्त करता है।”

प्रभु की वाणी का अनुसरण कर मुनि दमसार ने क्रोध को जीतने का दृढ़ संकल्प किया। क्षमा, शान्ति और उपशम की आराधना-साधना में जुट गए। दमसार वास्तव में ही दमसार अर्थात् सम-सार (क्षमा ही सार) बन गई। और सातवें दिन ही उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवताओं ने दुन्दुभिनाद करके केवली मुनि दमसार का जयघोष किया।



नियमनिष्ठा का चमत्कार

कम्पिलपुर नामक नगर में रिपुमर्दन नाम का धर्म-निष्ठ और प्रजावत्सल राजा राज्य करता था। उसी नगर में अकिंचन नाम का एक लकड़हारा भी था। नगर में और भी बहुत लकड़हारे थे, उनमें से एक अकिंचन भी था। अकिंचन की दिनचर्या थी—प्रातः उठकर साथी लकड़हारों के साथ जंगल जाना, दिनभर लकड़ियाँ काटना और शाम होने पर लकड़ियों का गट्ठर बेचकर आटा-दाल खरीदकर अपना पेट भरना और सो जाना।

एक दिन अकिंचन नित्य की तरह कन्धे पर कुल्हाड़ी और हाथ में रस्सी लिए जंगल को ओर जा रहा था। तभी उसे एक मुनि के दर्शन हुए। अकिंचन ने मुनि की वन्दना की। मुनि ने आशीर्वाद देते हुए अकिंचन से पूछा—

“भाई ! जीवन एक-एक मिनट, एक-एक दिन और एक-एक वर्ष करके यों ही बीता जा रहा है। कुछ धर्म-कर्म भी करते हो या नहीं ?”

अकिंचन ने कुल्हाड़ी जमीन पर टेकी और कहा—

“मुनिवर ! करना तो चाहता हूँ, पर कर नहीं पाता ।”

“क्यों ?” मुनि ने पूछा ।

अकिंचन ने मजबूरी जाहिर की—

“गुरुदेव ! पेट की आग बुझाने में ही पूरा समय निकल जाता है । न तो साधुओं के सत्संग के लिए समय मिलता है और न धर्माराधन के लिए । मेरा जीवन ही ऐसा है ।”

मुनि ने समझाया—

“वत्स ! धर्म के लिए किसी उपाश्रय जाने की अथवा अलग से समय निकालने की कोई आवश्यकता नहीं । तुम्हारा जैसा भी जीवन-क्रम है, उसी जीवन-क्रम को चलाते हुए भी तुम धर्म-कर्म कर सकते हो ?”

प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अकिंचन ने पूछा—

“कैसे कर सकता हूँ, प्रभो !”

मुनि ने फिर समझाया—

“अपनी जीविका के अनुकूल कोई व्रत-नियम ले लो । ऐसा व्रत-नियम कि जीविका भी चलती रहे और व्रत-नियम भी निभता रहे ।”

मुनि के सामने ही अकिंचन ने नियम लिया—

“आज से मैं कभी भी हरे वृक्षों को नहीं काटूँगा। जहाँ भी सूखा काष्ठ मिलेगा, उसी को काटकर उदर-पूर्ति करूँगा।”

मुनि अपने उपाश्रय को चले गए और अकिंचन जंगल में लकड़ी काटने चला गया। अब वह नित्य ही सूखे वृक्षों को लकड़ियाँ काटकर लाता। उसका नियम और जीविका दोनों साथ-साथ विना किसी रुकावट के चलते रहे।

× × ×

वर्षा ऋतु में चारों ओर हरियाली छा गई। सूखे वृक्षों में भी पत्ते निकल आये। अकिंचन पूरे जंगल में भटका, पर कहीं भी सूखी—निर्जीव लकड़ी नहीं मिली। अकिंचन खाली हाथ घर लौटा। अकिंचन के साथियों ने समझाया—

“अकिंचन ! ऐसे खाली हाथ कब तक लौटते रहोगे ? जीवन है तो व्रत-नियम भी हैं। जब जीवन ही नहीं तो नियम का पालन कैसे करोगे। आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति—के अनुसार वर्षा ऋतु में सूखी लकड़ियों का नियम छोड़ दो—ग्रीष्म ऋतु में नियम पालन कर लेना।”

अकिंचन का उत्तर था—

“साथियो ! धर्मविहीन जीवन किस काम का ? यह तो मेरी परीक्षा है। अब तक मैंने नियम का पालन किया, अब परीक्षा के समय नियम को क्यों त्यागूँ। नियम पालन

करते हुए यदि मेरा जीवन नष्ट ही जाए तो मेरा जीना सार्थक होगा। नियम को तोड़कर हजारों वर्ष का जीवन भी वृथा है। जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं मैं अपने धारण किये गये नियम को नहीं त्यागूँगा।”

अकिंचन नित्य खाली लौटता रहा, पर उसने हिम्मत नहीं हारी और न विचलित हुआ। एक दिन ईंधन की खोज में एक पहाड़ी जंगल में जा पहुँचा। वहाँ उसे सूखी लकड़ियों के बहुत-से वृक्ष मिल गये। कई दिनों के लिए एक ही स्थान पर सूखा ईंधन मिल गया। अकिंचन ने उत्साहपूर्वक एक गट्ठर तैयार किया और खुशी-खुशी शहर की ओर चल दिया। शहर आते-आते अँधेरा हो गया। अकिंचन ने सोचा, ‘अब तो बहुत देर हो गई। कल दिन में ही गट्ठर बेचूँगा।’ यह सोच अकिंचन खाना बनाने बैठ गया।

कम्पिलपुर नगर का धनदत्त नाम का एक सेठ अपने उद्यान की ओर जा रहा था। रास्ते में अकिंचन का घर पड़ा। जलती हुई लकड़ियों की सुगन्ध से आकृष्ट हो धनदत्त अकिंचन के घर में घुस गया और लकड़ियों के ढेर को देखकर अवाक् रह गया। आँखें फाड़कर बहुत देर तक देखता रहा। फिर एक रुपया अकिंचन की ओर फेंककर बोला—

“इन लकड़ियों में से एक लकड़ी मुझे दे।”

अकिंचन ने सोचा, 'और दिन तो मैं पूरा गट्ठर एक रुपये का बेचता था। आज एक लकड़ी का ही एक रुपया मिल रहा है। अवश्य ही ये लकड़ियां रहस्यभरी हैं।' यह सोच अकिंचन ने कहा—

“मुझे लकड़ियाँ बेचनी नहीं हैं।”

“क्यों?” धनदत्त ने पूछा—“क्या लकड़ियाँ बेचना छोड़ दिया है या मन में लोभ आ गया है?”

अकिंचन ने कहा—

“मेरी चीज है, बेचूँ या न बेचूँ, मेरी इच्छा। हाँ, आप इतनी कृपा कर सकें तो करें कि इस लकड़ी के गुण मुझे बता दें। आप एक लकड़ी का एक रुपया दे रहे हैं, इससे इतना तो मैं जान ही गया कि यह लकड़ी साधारण लकड़ी नहीं, चमत्कारी और बहुमूल्य लकड़ी है।”

धनदत्त ने बताया—

“यह तो बावना चन्दन है। हरिचन्दन अथवा गोशीर्ष चन्दन भी इसे कहते हैं। यह सर्वथा अलभ्य है—लाखों रुपये खर्च करने पर भी यह नहीं मिलता।”

अकिंचन ने हँसकर कहा—

“सेठजी! लाखों की चीज एक रुपये में ही खरीद रहे थे? फिर भी, आपने मुझे इसके गुण बताये हैं, इसलिए मैं एक लकड़ी आपको वैसे ही देता हूँ।” यह कहकर अकिंचन ने एक लकड़ी धनदत्त को दे दी।

सवेरा होते ही अकिंचन लकड़ियों का गट्ठर लेकर बाजार गया। उसके साथियों ने उसका मजाक उड़ाया—

“हाँ, भाई अब तो जरूर पेट भर लोगे। कितने दिन में ये लकड़ियाँ मिली हैं। ऐसे कितने दिन गुजर करोगे?”

साथियों को कुछ भी उत्तर दिये बिना अकिंचन एक सेठ के यहाँ पहुँचा और सवा लाख में लकड़ियाँ बेच दीं।

अकिंचन अब कुछ-से-कुछ हो गया। उसको झोंपड़ी भव्य प्रासाद में बदल गई। धर्मपत्नी भी घर आ गई और धर्म-नियमों का पालन करते हुए सुख से जीवन बिताने लगा।



माँ की पुकार

राजकुमार अरणिक धर्मगुरु ज्ञानी मुनि का उपदेश सुन रहे थे। मुनि के श्रीमुख से निकला एक-एक वाक्य और प्रत्येक शब्द उनके मन की गहराई में उतरता जा रहा था। कुछ लोग केवल सुन रहे थे और मुनि की वाणी कानों के आर-पार हो रही थी और कुछ सुनने से अधिक सोच रहे थे। उपदेश की समाप्ति के बाद राजपुत्र अरणिक ने विचार किया—

“पूर्व पुण्यों के कारण मैं राजपुत्र बना। सुन्दर, स्वस्थ और सुकुमार शरीर पाया। मेरे लिए सुखों का ओर-छोर नहीं। दास-दासी हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। मैं आज तक यह तो जान ही नहीं पाया कि सर्दी में कैसे ठिठुरते हैं, गरमी की वेदना कैसी होती है। लेकिन इन सबसे मेरी आत्मा को क्या सुख मिलता है? लोग इस जीवन को आनन्दमय कहते हैं, पर मुझे तो यह आनन्दशून्य ही लगता है। राजपद से भी ऊँचा पद परमपद है। थोड़े-से पुण्यों से राजपद मिला और चारित्र्य की कठोर साधना से

परम पद मिलेगा। अब ज्यादा समय गुजारने से लाभ नहीं। आलस्य में समय खोया तो कुछ भी हाथ न रहेगा। आलसी के सिवा सब मनुष्य अच्छे हैं। मैं आज ही—आज ही क्यों, अभी दीक्षा अंगीकार करूँगा। बस, माता-पिता से अनुमति ही तो लेनी है।’

मुनि वचनों से प्रतिबुद्ध राजकुमार पिता के पास आये और मन का इरादा बताते हुए बोले—

“पूज्य तात ! मैं अब संयम लेकर आत्म-कल्याण करूँगा।”

“क्यों, जीवन के उदयकाल में राजसुखों को त्यागकर संयम लेने का विचार तुमने क्योंकर किया ?” पिता ने पूछा।

राजकुमार अरणिक ने कहा—

“तात ! राजसुख तो मैं पहले अन्य जन्मों में भी भोग चुका हूँ, पर परमसुख अभी तक नहीं प्राप्त कर सका। अब इस नरभव को परम पुरुषार्थ करके मोक्षपद प्राप्त करने में लगाऊँगा।’

पिता ने समझाया—

“वत्स ! तुम्हारा विचार सराहनीय है, पर अभी तुम्हारी अवस्था महाव्रतों का पालन करने की नहीं है। अभी तो तुम्हें विवाह करना है। मेरी तरह राज्य को एक उत्तराधिकारी देना है। कुछ दिन यौवनसुख भोगने

के बाद ही संन्यास की बात सोचना । श्रमण बनकर संयम पालन करना हँसी-खेल नहीं । तलवार की धार पर चलना, इतना आसान नहीं, जितना तुम सोच बैठे हो । महाव्रतों का पालन तुम जैसा सुकुमार राजपुत्र कैसे कर पायेगा ? जिसने कभी अपने हाथ से जलपात्र उठाकर पानी नहीं पिया, क्या वह गोचरी के लिए द्वार-द्वार घूम सकेगा ? नंगे पैर, नंगे सिर तपती धूप में क्या तुमसे दस कदम भी चला जाएगा ?”

राजपुत्र ने दृढ़ता से कहा—

“पिताजी ! जो निश्चय कर लेता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं । महाव्रतों का पालन करने वाले भी तो आखिर मनुष्य ही होते हैं । मैं भी तो मनुष्य हूँ । हमारे तीर्थंकर भी तो मेरी ही तरह सुकुमार वैभव-सम्पन्न राजपुत्र थे ।

“पिताजी ! हर्ष के साथ मुझे दीक्षित होने की आज्ञा दीजिए । वस, अब तो संयम ही मेरा लक्ष्य है, चारित्र्य ही मेरा उद्देश्य है—मुक्ति प्राप्त करना ही मेरे जीवन की सफलता है ।”

पुत्र की ऐसी दृढ़ता देखकर राजा विचार में पड़ गए—‘मैं बूढ़ा हो चला । यौवन सुख भी खूब लूटा, पर अभी तक मैं सांसारिक भोगों से ही चिपटा हूँ । मुझे भी दीक्षा ग्रहण करके आत्म-कल्याण करना चाहिए ।’

राजा ने पुत्र से कहा—

“पुत्र ! तू तो पितृ-ऋण से भी उऋण हो गया । तूने मुझे भी धर्म में स्थित कर दिया । तेरे साथ मैं भी दीक्षा ग्रहण करके जीवन सफल बनाऊँगा ।”

तभी महारानी अरणिक की माँ भी आ पहुँची । सारी परिस्थिति का अवलोकन कर रानी ने कहा—

“जिस महासुख को लेने पिता-पुत्र आगे बढ़ रहे हैं, तो क्या मुझ अकेली को इस दलदल में फँसा छोड़ जाएँगे ? मैं भी आप दोनों के साथ दीक्षा ग्रहण करूँगी ।”

एक के बाद एक तीनों दीक्षित हो गए । गुरुदेव ने तीनों को दीक्षा दी और मुनि धर्म के आचार-विचार बताकर श्रमण संघ में सम्मिलित कर लिया ।

× × ×

अरणिक के पिता मुनि बनकर भी पुत्र-मोह नहीं त्याग सके । पिता-मुनि पुत्र-मुनि को कुछ नहीं करने देते । पुत्रमुनि केवल स्वाध्याय में ही लगा रहता । पिता-मुनि स्वयं गोचरी को जाते और पुत्रमुनि को भोजन देते । जलपात्र में जल भरकर भी ले आते । पितामुनि के इस आचरण पर साथी मुनि उन्हें समझाते—

“मुनिवर ! आपके इस सहयोग से आपका पुत्र पंगु और अपाहिज हो जायगा । फिर वह कुछ भी नहीं कर सकेगा । मुनि जीवन के सामान्य कर्म भी जब आपका पुत्र

नहीं कर पायेगा तो अनशन, कायोत्सर्ग आदि कैसे कर पायेगा ? उसे स्वयं ही गोचरी करने दो ।”

पितामुनि अन्य मुनियों के इस कथन को हँसकर टाल देते । कहते—

“यह अभी बच्चा ही तो है । बहुत सुखों से पला है । समय पड़ने पर सब कर लेगा ।”

समय बीतता चला गया । पितामुनि आयुष्य पूर्ण कर परलोक सिंघार गए । पुत्रमुनि अरणिक का सहारा चला गया । अब तो उन्हें अकेले ही गोचरी के लिए जाना था । मुनि जीवन में भी कष्ट-पीड़ा अथवा परीषह का अनुभव न करने वाले अरणिक मुनि के लिए उपाश्रय से बाहर निकलना पर्वतारोहण से कम कठिन न था । लेकिन जब श्रमण बन ही गए तो श्रमणाचार का पालन तो करना ही पड़ेगा । गुरु से आज्ञा ले मुनि अरणिक गोचरी के लिए चल दिये ।

×

×

×

भीषण गरमी । झुलसा देने वाली धूप । हर कदम पर ऐसा मालूम पड़ता था मानो दहकते अंगारे पैरों के नीचे आ गये हों । ऐसी भीषण गरमी में अरणिक मुनि गोचरी के लिए बढ़े चले जा रहे हैं । पसीने से उनका शरीर तर हो रहा है । भूख के मारे चलना वैसे ही मुश्किल हो रहा है, ऊपर से यह गरमी कहर ढा रही है । प्यास के मारे कण्ठ सूखा जा रहा है । जैसे-तैसे मुनि वस्ती में पहुँच तो गए, पर

अब आगे बढ़ना उनके बस का नहीं। दरअसल सहारा पाकर व्यक्ति और भी ज्यादा बेसहारा बन जाता है। मुनि को एक भवन की शीतल छाया का सहारा मिल गया था। भवन के नीचे खड़े मुनि अरणिक धूप से त्राण पा रहे थे। इस सुखद छाया ने मानो उनके पैर में बेड़ी डाल दी थी।

भवन के ऊपर एक सुन्दरी बाला खड़ी हुई थी। उसका पति बहुत दिनों से परदेश गया हुआ था। वह कामपीड़िता नारी प्यासी आँखों से मुनि का सौन्दर्य देख रही थी। उसने सोचा—‘साधु को ऊपर आते कोई देख भी लेगा तो शंका नहीं करेगा, क्योंकि साधु-सेवा तो गृहस्थ का धर्म है।’ कामपीड़ित बाला ने दासी को भेजकर मुनि को ऊपर बुलवा लिया और सम्मान से बैठाकर पंखे से हवा करने लगी। ठण्डी हवा के स्पर्श से मुनि के प्राण लौट आये। फिर उस चतुरा ने उन्हें सुस्वादु भोजन कराया और मुनि को एक कमरे में आराम करने का आग्रह किया।

स्त्री सृष्टि का सबसे बड़ा जादू है। मेनका ने विश्वामित्र को भी नहीं छोड़ा। बड़े-बड़े तपस्वी और वीर इसके जादू से नहीं बचे। अरणिक मुनि ने देखा—इसकी चितवन में मौन निमन्त्रण है, एक बुलावा है और इस सबसे ऊपर एक आग्रह भी है। दोपहरी बिताने के बाद मुनि भारी

मन और फीके उत्साह से चलने को हुए तो बाला ने हाथ पकड़कर कहा—

“अब कहाँ जाते हो ? फूलों को ठुकराकर काँटों में भटकना कहाँ की बुद्धिमानी है ? मुने ! आनन्दशून्य जीवन से तो जीवन का न होना अच्छा !”

अरणिक मुनि का हाथ ढोला पड़ गया। उन्होंने रजोहरण, मुखवस्त्रिका उतारकर रख दी और अब तन-मन से पूरे गृहस्थ हो गए। काम-सुखों में डूबकर अपने जीवन को बिताने लगे। मुनि अरणिक का पीछे की ओर लौटना एक विडम्बना थी। सुख-भोगों के पीछे पड़कर हम महान सद्गुणों की अवगणना करते हैं। सच्चे आनन्द की कसौटी तात्कालिक प्रसन्नता नहीं, बल्कि वास्तविक आनन्दभोग की प्रसन्नता के बाद पछतावा नहीं रहता। जिस भोग में मुनि अरणिक आनन्द मान रहे थे, इसकी परिणति के बाद सभी को पछताना पड़ा है।

×

×

×

साधुसंघ में सभी चिन्तित थे—‘पूरी रात बीत गई, मुनि अरणिक गोचरी के लिए गये थे, अभी तक नहीं लौटे।’ साधुओं की चिन्ता कार्यरूप में परिणत हो गई। मुनि को इधर-उधर खोजा। वन-मरघट, एकान्त खण्डहर और आस-पास की बस्तियों में खोज कराई, पर अरणिक मुनि का कहीं पता न चला। निराश होकर अरणिक मुनि

की साध्वी माता को सूचना दी गई । साध्वी मोह-विह्वल होकर पागल बनी चारों ओर चिल्लाती फिरीं—‘बेटा अरणिक ! तू कहाँ गया ? कहाँ गया, मेरे लाल ? ओ अरणिक ! अपनी माता को दर्शन दे ।’

साध्वी के पीछे वालकों की भीड़ लगी चली जा रही थी । दर्शकों ने उनका तमाशा बना लिया था । ऊपर से मुनि अरणिक ने देखा—‘कोई पगली चिल्लाती फिर रही है । पीछे-पीछे बच्चे तालियाँ बजाते आ रहे हैं ।’ तभी कान में आवाज पड़ी—‘अरणिक ! बेटा अरणिक !’ मुनि ने आवाज सुनी तो चौंके, ध्यान से देखा—‘अरे ! यह तो मेरी माँ है ! साध्वी माँ ! मेरे प्रतिबोध से ही इन्होंने और पिताश्री ने दीक्षा ली थी । पिताश्री तो संयम पालन करते हुए परलोक सिधार गये । माँ अभी तक साधना-पथ पर हैं । पर मेरा क्या हुआ ? मैं किस गर्त में गिर गया ? मेरे तो दोनों लोक बिगड़ गए । अव……??’ सोचते-सोचते मुनि सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आये और भीड़ से घिरी माँ को पुकारा—

“माँ ! मैं यहाँ हूँ !”

साध्वी ने अरणिक को देखा—ऊपर से नीचे तक, नीचे से ऊपर तक । बोलीं—

“अरणिक ! यह तूने क्या किया ? मैंने, तेरे पिता ने तुझे बहुत रोका था कि महाव्रतों का पालन तेरे बस का

नहीं। पर तूने जिद की। इससे तो अच्छा था कि समय-पथ पर बढ़ता ही नहीं। बढ़कर लोटना कैसी कायरता है—छी ! छी ! तूने मेरे दूध को खूब उज्ज्वल किया !”

सच्ची बात का असर बड़ी जल्दी होता है। मुनि अरणिक का गला भर आया। फफक-फफककर बच्चों की तरह रोने लगे और माँ के पैरों से लिपटकर बोले—

“माँ ! अब मेरा क्या होगा ? मैं तो अब कहीं का न रहा। क्या अब भी मेरा उद्धार हो सकता है ?”

साध्वी माँ ने कहा—

“पुत्र ! शोक मत करो। भूल हरेक से होती है, पर सुबह का भूला शाम को लौट आये तो भूला नहीं माना जाता। मुझको ही देख, साध्वी बनकर भी मैं पुत्रमोह का नहीं त्याग सकी। भूल करना बड़ा दोष नहीं, बड़ा दोष भूल न मानने में है।”

“वत्स ! असत्य मार्ग पर हम चाहे जितनी दूर जा चुके हों, वहाँ से लौट पड़ना, चलते रहने से बेहतर है। वत्स ! धर्मयुद्ध बाहरी जीत के लिए नहीं होता, वह तो हारकर भी जीतने के लिए होता है। तुम्हारी यह हार भी जीतने के लिए ही हुई है।

“अरणिक ! अब शोक न करो।

“उठो और कर्तव्य-पथ पर डट जाओ। तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ा है, क्योंकि सत्य और सूर्य की किरणों को

बाहरी स्पर्श से विगाड़ना असम्भव है और हर प्राणी की आत्मा ऐसा ही सत्य है।”

मुनि अरणिक माँ के साथ लौट आये। कमान से छूटे हुए तीर को कौन पकड़ पाया है ? मुनि अरणिक को अपने काम-कीचड़ में फँसाने वाली विवश नारी देखती ही रह गई। मुनि अरणिक ने फिर मुड़कर भी नहीं देखा। जो अविवेक के कारण अपने को बन्धन में डालता है, विवेक जाग्रत होने पर वही व्यक्ति बड़े-से-बड़े बन्धन को एक ही झटके से तोड़ देता है।

वासना का उन्माद थोड़ी देर ही रहता है, पर उसका पछतावा बहुत देर तक। पछतावा हृदय की वेदना है और साथ ही निर्मल जीवन का उदय। मुनि अरणिक का जीघन अब पूर्णतः निर्मल बन गया था।

×

×

×

अपनी माता के साथ मुनि अरणिक गुरु के समक्ष उपस्थित हुए। गुरु ने पुनः चारित्र ग्रहण कराया। मुनि ने माता और गुरु से कहा—

“आपकी कृपा से आज मेरा जीवन पुनः पवित्र हो गया। अब तक के जीवन में मैंने अनुभव किया कि चारित्र का पालन अत्यन्त कठिन है। लेकिन इसका अभिप्राय आप यह न समझें कि मेरी प्रवृत्ति भोगों की ओर उन्मुख है।” मुनि अरणिक ने फिर गुरु से निवेदन किया—

“गुरुदेव ! आपकी आज्ञा हो तो मैं दूसरे ढंग से कर्मों

का क्षय करना चाहता हूँ। यह तरीका तो बहुत लम्बा और धीरे-धीरे चलने का है।”

गुरु ने साश्चर्य पूछा—

“कौन-सी विधि अपनाओगे, वत्स ?”

मुनि अरणिक उसी समय दहकती प्रस्तर शिला पर लेट गए ? ऊपर से सूर्य आग बरसा रहा था। तदनन्तर मुनि अरणिक ने कहा—“गुरुजी ! मुझे तो यही राह पसन्द है। आज मुझे कहावत याद आ रही है—सौ चोट सुनार की, एक लुहार की।”

गुरु और साध्वी माता अरणिक की ओर देखते ही रह गए। मुनि अरणिक ने अनशन शुरू कर दिया और तप्त-शिला पर लेटकर कर्मों का क्षय करने लगे। थोड़े ही समय में उन्होंने पाप-मल को जला दिया और शरीर त्यागकर स्वर्गलोक की प्राप्ति की। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि छोटी-सी उम्र में ही एक ऐसे सुकुमार साधु ने स्वर्ग प्राप्ति कैसे कर ली, जो एक दिन की गोचरी में ही कुम्हला गया था और सांसारिक जीवन की ओर लौट पड़ा था। वास्तविकता यह है कि ऐसा दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति, जो प्राण देने के लिए तैयार है, ब्रह्माण्ड तक को हाथों पर उठा सकता है। मुनि अरणिक ऐसे ही दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति थे। उनकी यह दृढ़ता दीक्षा लेते समय भी परिलक्षित हुई थी और अनशन तथा शिला-तप के समय भी देखी गई।



दुर्जेय शत्रु को जीता

खून से लथपथ भाई की तड़पती लाश को देखकर क्षत्रिय कुलपुत्र क्षणभर के लिए धक्-सा रह गया और क्षणभर में ही वह तड़पता शरीर भी शान्त हो गया। अभी तक कुलपुत्र सोच भी नहीं पाया कि क्या हो गया; और फिर एक चीख निकली—माँ SSS ! मेरा भैया नहीं रहा। अरे भैया तू मुझे छोड़कर....कुछ कहे बिना ही कहाँ चला गया....?"

क्षत्राणी माँ और क्षत्रिय भाई—दोनों के रुदन से पत्थर दिल भी पिघल रहे थे। आस-पास खड़े लोग शोक-सागर में डूबे हुए थे। कोई कह रहा था—

“च् च् च् ! किसी दुष्ट ने सोते हुए पर खड्ग का वार किया है। कायर कहीं का ?”

और एक कह रहा था—

“अगर वीर होता तो जगाकर मुकाबला करता.... सोते हुए को मारना और दीवार पर वार करना—दोनों ही बराबर हैं।”

एक तीसरा स्वर उभरा—

“बदले की भावना में आदमी पागल हो जाता है । उचित-अनुचित वह कहाँ सांच पाता है ? पता नहीं किस दुश्मनी का बदला उसने इससे लिया है……?”

ज्यों-ज्यों समय बीता कुलपुत्र और उसकी क्षत्राणी माँ को स्थिति का कुछ ज्ञान हुआ । क्षत्राणी का नारीत्व तड़प उठा । उसने अपने पुत्र को ललकारा—

“कुलपुत्र ! कायरों की तरह आँसू ही बहाता रहेगा ? क्या तू कहलाने भर का ही क्षत्रिय है ? क्या तेरी शिराओं में मेरा दूध रक्त बनकर नहीं बह रहा……?”

माँ की इस ललकार से कुलपुत्र मानो होश में आया—

“क्या माँ ! माँ !! अगर मैं होता तो क्या घातक मेरे भाई को मारकर चला जाता ? अगर वह यहाँ होता तो मैं दिखाता कि मैं कैसा क्षत्रिय हूँ । जो भाग गया, पीठ दिखा गया, उसके लिए क्या करूँ ?”

क्षत्राणी ने उसे धिक्कारा—

“अरे मूर्ख ! क्या मृग स्वयं ही सिंह के मुख में चला जाता है ? उठ, और यह तलवार ले । अगर तू सच्चा क्षत्रिय है तो आकाश-पाताल एक कर दे । अपने भाई के हत्यारे को धरती के गर्भ में से भी निकाल ला और उसके खून से इस खड्ग की प्यास बुझा, वरना मैं समझूँगी कि तू मेरा बेटा नहीं—मेरा बेटा कायर नहीं हो सकता ।”

कुलपुत्र का रक्त खौलने लगा । भींहेँ तन गई । म्यान से तलवार खींचसै हुए उसने कहा—

“माँ ss ! मैं कायर नहीं हूँ । तेरे चरण छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं घर तभी लौटूँगा, जब भाई के हत्यारे को तेरे चरणों में लाकर पटक दूँगा, और यह तलवार भी म्यान में तभी जाएगी जब तेरे सामने ही यह तेरे पुत्र-घातक का रक्त पी लेगी ।”

क्षत्राणी माँ की आँखों में प्रेमाश्रु थे । उसने पुत्र को आशीष दिया—

“मुझे तुझसे यही आशा थी । जा बेटा बन्धु-घातक को मारकर अपने कुल-वंश की परम्परा को सार्थक कर, क्षात्र-धर्म का पालन कर । जिनके शत्रु जीवित रहें, उनके जीने को धिक्कार है……।”

माँ के मुख से निकले ‘कायर’ और ‘धिक्कार’ शब्दों ने मानो उसके शौर्य और साहस को एक ही जगह साकार कर दिया । अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए अब वह क्षण-भर भी नहीं रुका । चलते समय उसे पता ही न था कि रात है या दिन । एक पेड़ के नीचे जब उसने चिड़ियों की चहचहाहट सुनी, तब उसे लगा—‘ओह ! सबेरा हो गया ! क्या मैं रात को ही चला आया था ?’ यह प्रश्न उसने अपने मन से किया और मन ने ही उत्तर दिया— ‘कुलपुत्र, जब तक तू अपने शत्रु को नहीं पा लेगा, तब तक

तू सभी द्वन्द्वों को समान समझेगा—शाम-सवेरा, रात-दिन, जाड़ा-गरमी, धूप-छाँह, भूख-प्यास सभी तेरे लिए बराबर हैं—बस, तेरा एक उद्देश्य है—बन्धुघातक को पकड़कर माँ के चरणों में डालना और उसके खून से इस खड्ग की प्यास बुझाना ।’

×

×

×

कुलपुत्र सुबह से शाम तक भटकता । रात को भी मारा-मारा फिरता । न आँखों में नींद थी, न मन में चैन था । इस तरह भटकते-भटकते पूरे बारह वर्ष बीतने को भाये पर उसे उसका शत्रु—बन्धुघातक नहीं मिला । पर क्षत्रिय की प्रतिज्ञा, उसका संकल्प पूरा हो गा, इसकी आशा उसे विचलित नहीं होने दे रही थी ।

उसकी आँखों पर वैर का चश्मा चढ़ा था । प्रतिहिंसा और प्रतिशोध के दो शीशे थे । अब उसे हर चीज, हर प्राणी में अपना शत्रु ही नजर आता । रात के अँधेरे में झाड़ी का झुरमुट उसे ऐसा लगता, मानो मेरा बन्धुघातक शत्रु कम्बल ओढ़े यहाँ बैठा हो । शत्रु की खोज में पर्वत-कन्दरायें, नदी की घाटियाँ, कछार, सघन और विरल जंगल—कुलपुत्र ने सभी कुछ छान मारा ।

एक दिन एक सुनसान क्षोपड़ी में उसने अपना शत्रु पा लिया और उस पर ऐसे दूट पड़ा, जैसे बाज चिड़िया पर दूटता है या चीता हिरन को दबोच लेता है । बस, कुलपुत्र ने उसकी मुद्कें बाँध लीं और ले चला अपने घर

की ओर। आज उसके पैरों में पंख लगे हुए थे। देखने वालों को तो वह धरती पर चलता दीख रहा था, पर स्वयं वह नहीं समझ पा रहा था कि वह चल रहा है, या उड़ रहा है।

बाहर से ही कुलपुत्र ने आवाज दी—

“माँ s !” और बन्धनयुक्त बन्धुघातक को माँ के चरणों में डालते हुए बोला—

“माँ ! यह रहा तेरे पुत्र का हत्यारा। ले यह खड्ग और अपने पुत्र का बदला ले।”

गर्व का अनुभव करते हुए क्षत्राणी ने कहा—

“नहीं बेटा, तू ही अपने भाई का बदला ले। आज इसे बता दे कि क्षत्रिय का खून ठण्डा नहीं होता।”

कुलपुत्र ने बन्धुघातक को ललकारा—

“अरे दुष्ट ! अब तू अपने इष्ट का स्मरण कर ले। अब मौत तेरे सामने खड़ी है.....।”

कुलपुत्र का शत्रु उसी तरह गिड़गिड़ाया, जैसे वधिका के फन्दे में पड़ी गाय रँभाती है—

“मुझे मत मारो। मैं तुम्हारी गाय हूँ। मेरे बिना मेरी बूढ़ी माँ रो-रोकर मर जाएगी, मेरी स्त्री बेसहारा हो जाएगी। मेरे छोटे-छोटे बच्चे अनाथ होकर तड़पेंगे। मुझे छोड़ दो। जीवनभर तुम्हारा चाकर बनकर रहूँगा।”

कुलपुत्र ने एक ठहाका मारा—

“ओहो, आज तुझे माँ की ममता, पत्नी का वियोग और बच्चों की बेवसी का ध्यान आ रहा है ? आज से बारह वर्ष पहले जब तूने मेरे सोते हुए भाई पर वार किया था, उस दिन का ध्यान कर ले । तूने मेरी माँ को तड़पाया, मुझे बन्धुहीन बनाया—मेरी एक भुजा ही काट ली । आज मैं सबका बदला लेकर ही पानी पीऊँगा ।”

वह फिर गिड़गिड़ाया । उसकी आँखों में बेवसी के आँसू थे । कुलपुत्र के पैर पकड़ते हुए आर्त स्वर में बोला—

“नहीं-नहीं ! मुझे मत मारो । मुझे अपना भाई समझकर छोड़ दो । जिन्दगी भर गुण गाऊँगा……यह अहसान……।”

क्षत्राणी का हृदय पिघल गया—

“छोड़ दो बेटा, छोड़ दो । इसे मत मारो । इसके मारने से तुझे कुछ न मिलेगा ।”

आश्चर्यचकित कुलपुत्र ने पूछा—

“माँ, यह तू कह रही है ? एक वीरमाता कह रही है, कि शत्रु को छोड़ दो ? माँ ! बारह वर्ष तक भूखे-प्यासे रहकर मैंने बन्धुघातक को पकड़ा है, और आज इसे जिन्दा छोड़ दूँ ? माँ ! तुझे क्या हो गया है ? याद कर, तूने मुझे कायर कहा था, मेरे पौरुष को धिक्कारा था । माँ,

मैं इसे नहीं छोड़ूँगा। इसके आंसू, इसकी दीनता—सब अभिनय है।”

क्षत्राणी—“बेटा ! तू सब कह चुका या और कुछ कहना है ?”

कुलपुत्र—“वस माँ ! अब और क्या कहूँगा ?”

क्षत्राणी ने कहा—

“तो सुन बेटा ! मैं वही कह रही हूँ जो एक वीरमाता को कहना चाहिए। क्षमा ही तो वीर का भूषण है। पहले अगर तू इसे जिन्दा छोड़ता तो वह तेरी बेबसो थी। कायर अपने शत्रु को डर कर ही छोड़ता है, कायर क्या क्षमा करेगा, वीर ही क्षमा कर सकता है। वीर की शोभा उसकी क्षमा है।

“बेटा ! जैसे आज मैं अपने बेटे के बिना तड़प रही हूँ, वैसे ही इसकी बूढ़ी माँ भी तड़पेगी। आज एक माँ तड़पती है, तब दो माताएँ तड़पेंगी। इसके मारने से भी न तो तुझे तेरा भाई मिलेगा और न मुझे मेरा बेटा मिलेगा।”

कुलपुत्र ने पूछा—

“लेकिन माँ ! इसने मेरे भाई का खून किया, उसका बदला कैसे पूरा होगा ?”

क्षत्राणी मुस्कराई—

“बेटा ! कोई किसी को नहीं मारता। मनुष्य अपने

कृत-कर्मों का ही फल पाता है। किसी पूर्वभव के वैर के कारण ही इसने तेरे भाई का वध किया है। शत्रु-मित्र—सब में समभाव रखना ही उचित है।

“बेटा ! मल से मल नहीं धुलता। वैर से वैर कभी समाप्त नहीं होता। वैर और क्रोध की यह शृंखला अनन्त काल से चली आ रही है। उसका कारण मनुष्य की यही भूल है कि वह वैर से वैर को धोता है। खून के दाग खून के धोने से क्या कभी छूटेंगे ? तू इसे मारेगा। इसके पुत्र बड़े होकर तुझे मारेंगे, फिर तेरे पुत्र बड़े होकर उन्हें मारेंगे……और वैर की यह परम्परा न जाने कब तक चलती रहेगी……।”

कुलपुत्र अब भी संशय में था—

“माँ ! शत्रु और भाई दोनों ही बराबर हैं ? क्या तू यह मानती है कि यह मेरे भाई का शत्रु नहीं, तेरे पुत्र का हत्यारा नहीं ? मान लो माँ, तेरी तरह सभी अपने शत्रुओं को छोड़ दिया करें तो हत्यारों को, घातकों को कितना प्रोत्साहन मिले ? फिर तो हत्या करने वाला और रक्षा करने वाला दोनों बराबर रहे ? क्या इसके अपराध का दण्ड देना उचित नहीं ? भाई की हत्या करके यह यों ही रह जायेगा ?”

माँ ने कहा—

“दण्ड ? बेटा—दण्ड देने का अधिकार तुझे नहीं।

कर्म-विपाक से मनुष्य स्वयमेव दण्ड पाता है। हास्य-विनोद में किये गये कर्म भी बँध जाते हैं, और अपना फल देते हैं। अपने किये का दण्ड यह स्वयं पायेगा।

“बेटा ! इसे ही तू अपना भाई मान। अपने हृदय को विस्तार दे तो सभी तुझे अपने भाई ही लगेंगे।”

कुलपुत्र ने तलवार से वन्धुघातक के वन्धन काट डाले और अपने गले से लगाकर हर्ष-विह्वल बोला—

“आज से तू ही मेरा भाई है। भले ही आज मैं जीता हुआ शत्रु हार गया, पर इस हार में भी जीत है। मुझे मेरा भाई मिल गया।”

उस व्यक्ति की आँखों में कृतज्ञता के आँसू थे। इस बन्धु-मिलन को देखकर क्षत्राणी ने कहा—

“बेटा ! तूने शत्रु को जीत कर नहीं हारा, बल्कि एक दुर्जेय शत्रु को जीता है। यह एक ऐसा शत्रु है, जिसे बड़े-बड़े पराक्रमी वीर भी नहीं जीत पाते।”

कुलपुत्र—“कौन-सा शत्रु, माँ ?”

क्षत्राणी—“क्रोध ! बेटा ! क्रोध दुर्जेय शत्रु है। इसे जीतना ही सच्ची वीरता है। आज तूने सबसे बड़े दुर्जेय शत्रु को जीत लिया है।

“अच्छा माँ” कहकर कुलपुत्र माँ के चरणों में गिर गया।

उपकारी श्रावक

एक श्रेष्ठी-पुत्र प्रतिबोधित हुआ और गुरु के पास दीक्षित हो गया। दीक्षित होते समय मुनि ने सोचा, 'साधनापथ में जा रहा हूँ। महाव्रतों का पालन करके जीवन सफल बनाना है, पर कभी ऐसा भी समय आ सकता है, जब भिक्षा न मिले अथवा दुर्भिक्ष ही पड़ जाए। ऐसे समय जीवन बचाना मुश्किल हो जाएगा। जब जीवन ही न बचेगा तो महाव्रतों की साधना कैसे होगी। ऐसे आड़े वक्त के लिए कुछ रख लेना चाहिए।' यह सोच मुनि ने एक बहुमूल्य रत्न अपने पास छिपाकर रख लिया।

मुनि ने शास्त्रों का अध्ययन किया। शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता मुनि अब अनेक साधुओं के गुरु बन गए। अपनी परिषद् में जब वे शंकाओं का समाधान करते तो श्रोता साधु श्रद्धावन्त हो जाते। सत्य, अहिंसा आदि विषयों पर मुनिवर ऐसा व्याख्यान देते कि श्रोता अभिभूत हो जाते, पूर अपरिग्रह का प्रसंग आने पर मुनि की बोलती बन्द हो

जाती। बहुत बार पूछने पर दबी जवान से इतना ही कहते—‘हाँ, परिग्रह भी बुरी चीज है।’

गुरु के बार-बार के इस संकोच को एक विज्ञ श्रावक ताड़ गया। उसने सोचा, ‘हर विषय में इतने गहरे पैठने वाले गुरु अक्सर अपरिग्रह के प्रसंग को टाल जाते हैं। कहीं-न-कहीं दाल में काला अवश्य है। श्रावक-शिष्य ने इस मर्म का भेद जानने का निश्चय कर लिया।

एक दिन सभी साधु और गुरु शौचादि के लिए बाहर गये हुए थे। उपाश्रय सूना था। शिष्य ने गुरु के वस्त्र टटोले और वस्त्रों में छिपा रत्न ले लिया।

उसी दिन गुरुदेव ने अपनी धर्म परिषद् में अपरिग्रह पर ऐसा व्याख्यान दिया कि श्रोता चमत्कृत हो गये। उक्त श्रावक भी ‘तहत्त वाणी’ की झड़ी लगा रहा था। गुरु ने समझ लिया, मेरे रत्न का अपहर्त्ता यही है।

व्याख्यान के बाद शिष्य ने कहा—

“गुरुदेव ! आज तो आपकी अपरिग्रह की व्याख्या असाधारण थी।”

“हाँ,” गुरु मुस्कराये—“तू भी तो यही चाहता था।” शिष्य गद्गद् कण्ठ से बोला—“गुरुदेव ! आप महान हैं। मेरा अपराध क्षमा करना।”

गुरु ने कहा—

“वत्स ! मैं तो तेरा उपकार ही मानता हूँ।”

पाप का घड़ा

किसी नगर में एक धनी सेठ रहता था। सेठ बड़ा ही दयालु, परदुःख-कातर, सदाचारी और धर्मनिष्ठ था। धनी होकर भी निरभिमानी था। उसी के पड़ोस में एक सामान्य स्थिति का मनुष्य रहता था, जो पूर्ण रूप से धनी सेठ के स्वभाव के विपरीत था। दूसरों का ऐश्वर्य उसकी आँखों में काँटे की तरह कसकता था। अपने पड़ोसी का धनी होना तो उसे अखरता ही था, नगर की जनता में उसका जो सम्मान था वह भी इस ईर्ष्यालु को सह्य नहीं था।

एक बार ईर्ष्यालु व्यक्ति के लड़के का ब्याह हुआ। इसने अपने पड़ोसी धनी सेठ से लड़के की शादी के लिए गहने उधार माँगे। उदार-हृदय सेठ ने अपने ईर्ष्यालु पड़ोसी को तत्काल गहने दे दिये।

लड़के की शादी हो गई, पर पड़ोसी ने धनी के गहने नहीं लौटाये। काफी दिनों की प्रतीक्षा के बाद जब धनी सेठ ने अपने गहने वापस माँगे तो ईर्ष्यालु ने आँखें निकाल कर कहा—

“क्या बार-बार गहने माँगते हो ? एक बार दे तो दिये । धनी होने का यह मतलब तो नहीं कि गरीबों को सताओ ।”

धनी व्यक्ति देखता रह गया । फिर शान्त स्वर में बोला—

“भाई ! सपने में तुमने शायद गहने दिये होंगे, पर प्रत्यक्ष में तो कभी नहीं दिये । यदि सीधी राह से नहीं दोगे तो मैं पंचों से न्याय माँगूँगा ।”

ईर्ष्यालु और बिगड़ गया । तड़पकर बोला—

“एक बार नहीं, सौ बार पंचायत करा लो । पंचायत से कौन डरता है ? आज जनता तुम्हारे पक्ष में है तो तुम यह समझते हो कि सच्चे को झूठा साबित कर दोगे । जनता तुम्हारी है तो हम गरीबों का भी भगवान है ।”

इस वार्तालाप के बाद ईर्ष्यालु व्यक्ति ने नगर की जनता में धनी सेठ को झूठा, बेईमान सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया । जो भी सुनता यही कहता—

“सेठजी तो ऐसे नहीं हो सकते । वे तो बहुत धर्मात्मा और दयालु हैं । वे कभी भी दो बार गहने नहीं माँगेंगे ।”

इस पर यह ईर्ष्यालु टिप्पणी करता—

“तुम क्या जानो, ? जिस पर बीतती है, वही जानता है । अपने को धर्मात्मा सिद्ध करने के लिए उसने कभी

तुम्हें दस-बीस रुपये दे दिए होंगे। लेकिन अब तो धन ही उसके लिए सब कुछ है। मानो धन लेकर ही स्वर्ग सिधारेगा। अरे भाई, मैंने एक बार गहने दे दिये; फिर भी दुबारा माँगता है।”

एक झूठ को बार-बार कहने पर वह सत्य-जैसा भासित होता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति के बार-बार कहने पर कुछ लोग सोचने लगे, ‘हो न हो, यह गरीब व्यक्ति ही ठीक हो। क्या पता, धनवान की नीयत बिगड़ गई हो।’

धनी सेठ ने सोचा, ‘गहने तो हाथ से गये ही, जनता में मेरी बदनामी भी हुई। यदि मैं चुप बैठ गया तो सब यही समझेंगे कि वास्तव में मैं बेईमान हूँ। अतः पंचों से न्याय माँगने में क्या हानि है?’

×

×

×

नियत समय पर पंचायत जुड़ी। सभी जनता झूठे-सच्चे का निर्णय देखने के लिए एकत्र थी। बस, ईर्ष्यालु व्यक्ति का ही इन्तजार था। काफी प्रतीक्षा के बाद हाथ में एक घड़ा लिए हुए ईर्ष्यालु व्यक्ति आया। आते ही विलम्ब के लिए उसने क्षमा माँगी।

पंचों ने दोनों पक्षों की बात सुनी। दोनों के कथन में दृढ़ता थी। पंचों ने ईर्ष्यालु व्यक्ति से कहा—

“यदि तुमने वास्तव में धनी सेठ को गहने लौटा दिये

हैं तो लोहे का दहकता गोला हाथ में लेकर यह सिद्ध करना होगा कि तुम सच्चे हो।”

ईर्ष्यालु ने कहा—

“अवश्य । साँच को आँच कहाँ ?”

अपने हाथ का घड़ा धनी सेठ को देते हुए ईर्ष्यालु ने कहा—

“सेठजी ! तनिक देर के लिए मेरा यह घड़ा पकड़ना, मैं पंचों के सम्मुख अपनी सत्यता प्रमाणित करके दिखा दूँ।”

धनी सेठ को घड़ा देकर ईर्ष्यालु ने सब पंचों और जनता के सम्मुख ऊँची आवाज में कहा—

“अगर मैंने सेठ के गहने लौटा दिये हैं और मैं सच्चा हूँ, तो लोहे के इस दहकते गोले से मेरा हाथ नहीं जलेगा।”

यह कह ईर्ष्यालु ने लोहे का दहकता हुआ गोला हाथ में उठा लिया । चमत्कार हुआ कि उस व्यक्ति के हाथ पर वह गोला ऐसे रखा रहा, जैसे वर्फ का ढेला रखा हो ।

चारों ओर से आवाजें आई—

“गरीब बेचारा सच्चा है । धनी सेठ झूठा और बे-ईमान है ।”

ईर्ष्यालु भी तो यही चाहता था । उसके मन की इच्छा पूरी हुई ।

धनी सेठ की आँखों के सामने अँधेरा छा गया—

“प्रभो ! यह तूने क्या किया ? मैं दीन-दुनिया—दोनों से गया । भगवन् ! तेरे दरबार में झूठा सच्चा क्योंकर हो गया ।”

इसी घबराहट में धनी सेठ के हाथ से घड़ा छूट पड़ा । घड़े में भरा अनाज बिखर गया और अनाज में छिपे गहने सबकी आँखों में चमकने लगे ।

सभा में सन्नाटा था । शोर-गुल बन्द हो चुका था । गम्भीर आवाज में सवने कहा—

“पाप का घड़ा ऐसे ही फूटता है । सच्चाई सामने आने में देर है, पर अन्धेर नहीं । आखिर झूठा, झूठा ही रहा और सच्चा, सच्चा रहा ।

ढोंग देखकर बन्दर रोया

किसी जंगल में एक बूढ़ा शेर रहता था । भाग-दौड़ कर शिकार करने की शक्ति उसमें नहीं थी । आस-पास ही कोई शिकार मिल जाए तो मारकर खा लेता । लेकिन उसके भक्ष्य वनजीव तो उसकी गन्ध से कोसों दूर छिपे रहते ।

एक बार शेर को तीन-चार दिन तक कोई शिकार नहीं मिला । शेर ने सोचा, 'साधु का ढोंग रचूँ तो सभी जीव-जन्तु मेरे पास आने लगेंगे और मैं तीन-चार दिन की भूख को शान्त कर लूँगा ।' यह सोच शेर जमीन को फूँक-फूँक कर कदम रखने लगा । वह इतने धीरे-धीरे कदम रखता कि चींटी भी यदि पैर के नीचे आ जाए तो मरे नहीं । पेड़ पर बैठे एक शाखामृग—बन्दर ने देखा तो कुतूहलवश पूछ बैठा—

“जंगल के राजा ! आज यह उल्टी चाल कैसे ? धरती पर फूँक-फूँक कर कदम क्यों रख रहे हो ? कदम भी इतने धीरे कि बताशा भी न फूटे ।”

शेर ने गंभीर मुद्रा बनाकर कहा—

“भैया बन्दर ! पूरा जीवन हिंसा और पाप करते बीत गया । अब जीवन का उत्तरार्ध तो सुधार लूँ । जमीन पर सँकड़ों छोटे-मोटे जीव रहते हैं । कहीं किसी जीव की हिंसा न हो जाए इसीलिए आहिस्ता-आहिस्ता फूँक-फूँक कर चल रहा हूँ । भैया ! अब तो चींटी के मरने से भी मन में दुःख होता है ।”

इस साधु-शेर को देखकर बन्दर श्रद्धा से झुक गया । सोचा, ‘इस महात्मा के चरण छूकर अपना जीवन सफल कर लूँ ।’ बन्दर नीचे उतर कर शेर के निकट आकर चरणों में झुका । शेर तो अवसर की ताक में ही था, झट से बन्दर को मुँह में भर लिया ।

बन्दर ने सोचा, ‘साधु वेश के कारण ठगा गया । अब तो मौत निश्चित है । पर मरते-मरते भी यदि बचने का उपाय कर लूँ तो हानि क्या है ?’ विचार करते ही बन्दर ठहाका मार कर हँसा । बन्दर के इस असामयिक अट्टहास पर शेर को बड़ा आश्चर्य हुआ । बन्दर से पूछा—

“क्यों रे मूर्ख ! अब तू पूरी तरह से काल के मुँह में है । मरने के समय भी तू हँस रहा है ?”

बन्दर ने कहा—

“वनराज ! मूर्ख मैं नहीं तुम हो, जो ऐसे अवसर को खो रहे हो । इस समय जो मेरी तरह ठहाका मारकर हँसेगा, वह सीधा स्वर्ग जायेगा ।”

शेर बन्दर की बातों में आ गया और अट्टहास करके ऐसा हँसा कि सारा जंगल गूँज उठा। बन्दर शेर के मुँह से छूट गया और उछलकर पेड़ पर जा बैठा। शेर देखता रह गया। शेर को देखकर बन्दर फूट-फूट कर रोने लगा। शेर ने पूछा—

“बन्दर ! तेरे हँसने का रहस्य तो मैं जान गया कि तू बन्धन-मुक्त होने के लिए हँसा था। पर अब जबकि तू काल के गाल से मुक्त हो गया है, तुझे हँसना चाहिए; फिर भी तू फूट-फूट कर रो रहा है। तेरे रोने का रहस्य क्या है ?”

बन्दर ने कहा—

“मैं यह देखकर रो रहा हूँ कि अब संसार में तुझ जैसे साधु पैदा हो गये हैं। यह ढोंग और पाखण्ड देखकर मुझे रोना आ रहा है।”

सत्य-असत्य की मिलावट

किसी नगर में तम्बाकू और घी का एक व्यापारी रहता था। उसकी दुकान पर घी और तम्बाकू—यही दो चीजें मिलती थीं। व्यापारी का लड़का मूर्ख था। उसे खाने-खेलने के अलावा दुकानदारी से कोई प्रयोजन नहीं था। अकेला व्यापारी ही सब लेन-देन, खरीद-फरोख्त करता था।

एक बार व्यापारी को तम्बाकू खरीदने एक गाँव जाना था। प्रस्थान से पूर्व उसने अपनी पत्नी से कहा—

“आज शाम तक के लिए मुझे शहर से बाहर जाना है। आज पूरे दिन दुकान बन्द पड़ी रहेगी। यदि हमारा लाड़ला कुछ समझदार होता तो एक दिन की बिक्री न मारी जाती।”

पास ही खड़े व्यापारी के लड़के ने कहा—

“पिताजी ! आखिर मैं हूँ तो आपका ही पुत्र। इसमें परेशान होने की क्या बात है ? आप मुझे भाव बताते जाइये। बैठा-बैठा मैं बेचता रहूँगा।”

व्यापारी को पुत्र की बात से कुछ आशा बैधी । प्रसन्न होकर बोला—

“इससे अच्छी क्या बात है ? भाव की कोई दिक्कत नहीं । हमारी दुकान में दो ही तो चीजें हैं—घी और तम्बाकू । दोनों का एक ही भाव है । भाव याद रखने में तुझे कुछ दिक्कत न होगी ।”

व्यापारी ने इतना और कहा—

“हाँ, एक बात का ध्यान रखना । जब तक खुले टीनों का माल समाप्त न हो जाय, तब तक बन्द टीनों को मत खोलना ।”

व्यापारी गाँव चला गया और उसका लड़का दुकान पर आ बैठा । लड़के ने दुकान का निरीक्षण किया । दुकान में सील बन्द टीनों को तो उसने यों ही रहने दिया । उसने दो खुले टीन देखे । दोनों आधे-आधे घी और तम्बाकू से भरे थे । सेठ के पुत्र ने सोचा—

‘पिताजी मुझे मूर्ख समझते हैं, पर अपनी मूर्खता नहीं देखते । आज मैं उन्हें अपनी बुद्धिमानी से चमत्कृत कर दूँगा । उन्होंने एक ही भाव की दो चीजों के लिए दो टीन घेर रखे हैं । घी-तम्बाकू एक ही टीन में आ सकते हैं । एक टीन आधे घी से बेकार घिरा है ।’

यह सोच सेठ के लड़के ने घी से आधा भरा टीन तम्बाकू के आधे खाली टीन में उँडेल दिया और मन-ही-

मन बड़बड़ाया—‘अब ग्राहकों को माल बेचने में कितनी सुविधा रहेगी। घी माँगें या तम्बाकू—एक ही टोन में से दे दिया जायेगा, दोनों का एक ही भाव तो है।’

तम्बाकू का एक ग्राहक आया। लड़के ने घी मिला तम्बाकू दिखाया। ग्राहक ने नाक-भौं सिकोड़कर पूछा—

“यह कैसा तम्बाकू है ? घी है या तम्बाकू ?”

लड़के ने कहा—

“बहुत बढ़िया तम्बाकू है। लेना हो लो, नहीं तो आगे बढ़ो।”

ग्राहक लड़के को खरी-खोटी सुनाता हुआ आगे बढ़ गया। थोड़ी ही देर बाद एक घी का ग्राहक आया। उसने तम्बाकू मिला घी देखा तो बोला—

“यह तम्बाकू दे रहे हो या घी ?”

लड़के ने समझाया—

“भाई, घी भी है और तम्बाकू भी। दोनों का एक ही भाव है। जैसा चाहो प्रयोग करना। यह घी का भी काम देगा और तम्बाकू का भी।”

ग्राहक बड़बड़ाता हुआ चला गया।

इसी तरह शाम तक अनेकों ग्राहक आये। सेठ के लड़के का सभी से झगड़ा हो गया। झल्लाते हुए उसने दुकान बन्द कर दी और पिता का इन्तजार करने लगा। गाँव से जब उसका पिता लौटा तो बेटे से पूछा—

“बेटा ! कुछ बिक्री हुई या नहीं ?”

बेटा तो भरा बैठा था । बिगड़कर बोला—

“पिताजी ! आपने सब ग्राहकों की आदतें बिगाड़ दी हैं । जानें आप कैसे माल बेच देते हैं ? मुझसे तो सभी ग्राहकों ने झगड़ा किया । आज माल खरीदने एक भी नहीं आया, सबके सब मुझसे झगड़ा करने ही आये थे ।”

व्यापारी का माथा ठनका । पुत्र से बोला—

“बेटा ! ग्राहक तो ऐसे झगड़ालू नहीं थे । कहीं-कहीं तुझसे भूल हुई है ।”

पुत्र ने बिगड़कर कहा—

“पिताजी ! कल मैं आपके साथ दुकान पर बैठूँगा । फिर देखूँगा कि आप कैसे माल बेचते हैं । आज किसी ने माल पसन्द नहीं किया । उल्टे मुझे ही खरी-खोटी सुनाई ।”

सेठ मन-ही-मन गुत्थी सुलझाता रहा । पर कोई भी कारण समझ में नहीं आया । दूसरे दिन पिता-पुत्र दोनों दुकान पर बैठे । सेठ ने दुकान का निरीक्षण किया । धी का खाली टीन देखा तो पूछा—

“माल कुछ भी नहीं बिका, लेकिन इस कनस्तर का धी कहीं है ?”

पुत्र बोला—

“पिताजी ! आपने भी कमाल किया था । एक कन-
स्तर यों ही घेर रखा था । एक भाव की दो चीजों को मैंने
एक कर दिया ।”

पिता ने कहा—

“बस, बेटा बस । झगड़े के कारण का पता लग गया ।
मूर्ख की मूर्खता तो मैंने बहुत देखी, पर आज मूर्ख की बुद्धि-
मानी भी देखली ।……अब तू इतना और कर कि एक भाव
की इन दोनों मिली हुई चीजों को घूरे पर डाल आ ।”

जीवन में सत्य का उपयोग तो है ही, कभी-कभी
असत्य भी उपयोगी प्रतीत होता है, मगर सत्य-असत्य की
मिलावट करने वाला दोनों को ही अनुपयोगी बना
देता है ।



उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः

एक व्यापारी के चार पुत्र थे। घर में धन की कमी नहीं थी। अकेला व्यापारी ही इतना उपार्जन करता कि पूरा घर चैन की वंशी बजाता। चारों लड़कों का व्यापार में कोई सहयोग नहीं था। अभी उनके खाने-खेलने के दिन थे।

एक दिन व्यापारी ने सोचा, 'अब मैं बूढ़ा हो चला हूँ। मेरे बाद लड़कों को ही व्यापार सँभालना है। लेकिन अपने जीते-जी यह भी देख लूँ कि कौन-से लड़के में व्यापार चलाने की सामर्थ्य है और कौन व्यापार की जम्मा पूँजी को भी चौपट करने वाला है। यदि चारों ही योग्य हुए तो चारों का ही अपना कार्यभार सौंप दूँगा।'

यह सोच व्यापारी ने अपने चारों पुत्रों को बुलाया और कहा—

“पुत्रो ! अब तक तुम मेरे अनुशासन में रहे हो। मैंने तुम चारों पर खर्च करने का अंकुश भी रखा है। आज से मैं तुम्हें स्वतन्त्र जीवन जीने की छूट देता हूँ।”

सामने रखी धन से भरी थैलियों की ओर संकेत करते हुए व्यापारी ने पुनः कहा—

“ये थैलियाँ तुम चारों के लिए हैं। चारों भाई एक-एक थाली उठा लो। प्रत्येक थैली में एक-एक लाख रुपये हैं। इन रुपयों से अपने ढंग की नई जिन्दगी प्रारम्भ करो।”

एक-एक करके तीन भाइयों ने एक-एक थैली उठा ली और चौथा भाई खड़ा देखता रहा। उसे चुपचाप खड़ा देख व्यापारी ने कहा—

“तुम भी उठाओ। खड़े क्यों हो?”

“नहीं, मैं नहीं उठाऊँगा।” व्यापारी के छोटे लड़के ने दो टूक जवाब दिया।

“क्यों?” व्यापारी ने प्रश्न किया।

छोटे लड़के ने बताया—

“पिताजी ! इस धन पर मेरा कोई अधिकार नहीं। यह धन आपकी कमाई का है।”

पिता ने पूछा—

“क्या पिता के धन का उपयोग पुत्र नहीं करता?”

पुत्र ने कहा—

“करता है। पर जब तक वह असमर्थ रहे, तब तक।”

सेठ ने आग्रह किया—

“पुत्र इसी धन से तेरा पालन-पोषण हुआ है और इसी धन को तू अपना नहीं मानता ?”

“पिताजी ! पुत्र का पालन करना तो पिता का कर्तव्य है, पर पुत्र को अकर्मण्य बनाना पिता का फर्ज नहीं । पिता के धन को पाकर पुत्र धन का महत्व नहीं समझता । पिता के धन से खर्च करने की आदत बढ़ती है और उपार्जन की क्षमता मिटती है ।”

व्यापारी ने एक बार और कहा—

“लेकिन भाग्य से प्राप्त धन को कौन ठुकराता है ? माना कि यह धन तेरे द्वारा उपार्जित नहीं है, पर तेरे भाग्य का फल तो है ?”

पुत्र ने कहा—

“पिताजी ! यह अकर्मण्य का भाग्य है । पुरुषार्थ करने पर व्यापार में जो लाभ होता है, वह पुरुषार्थ का भाग्य है । मुझे पुरुषार्थ का भाग्य चाहिए, आलसी का भाग्य नहीं । भाग्य का भरोसा करने वाले शेर के मुख में मृग नहीं जाता । भाग्य से यदि कहीं हिरन दीख जाए तो पुरुषार्थ करके सिंह अपने भाग्य को सार्थक करता है और हिरन का भोजन करता है । पुरुषार्थ कभी विफल नहीं होता—

भाग्यं वैफल्यमायाति, नाभ्यासस्तु कदाचन ।

व्यापारी अपने पुत्र के युक्ति-युक्त कथन को सुनकर आनन्द-विभोर हो गया । अपने व्यापार का कार्यभार उसने अपने इसी छोटे पुत्र को सौंप दिया । शेष तीनों पुत्र थैली लेकर ही सन्तुष्ट हो गए ।

किसी ने ठीक ही कहा है—

“मेरे दाएँ हाथ में पुरुषार्थ है और बाएँ हाथ में सफलता—कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः ।”



बुराई की स्मृति भी घातक

[विष का प्रभाव]

चार व्यक्ति परदेश से धन कमाकर अपने घर लौट रहे थे। पैदल का रास्ता। पहले दिन की मंजिल पूरी कर शाम को एक गाँव में ठहरने का विचार किया। गाँव में घुसते ही एक बुढ़िया का मकान मिला। चारों उसी के घर ठहर गए।

रात का अँधेरा बढ़ चला था। बुढ़िया ने चारों से कहा—

“बेटा ! रात में मुझे कम दीखता है। सुबह मैं तुम्हारे लिए गरम-गरम खाना बनाऊँगी, इस समय थोड़ी-सी छाछ रखी है, उसी को पीलो।”

चारों ने प्रसन्नता के साथ बुढ़िया का आतिथ्य स्वीकार किया। बुढ़िया ने चारों को छाछ पिलाई। चारों ही तृप्त हो गए और यात्रा की थकान के कारण गहरी नींद में सो गए। प्रातःकाल बहुत जल्दी उठे और बुढ़िया से प्रस्थान

की आज्ञा माँगी । बुढ़िया ने आग्रह किया—“बिना खाना खिलाये न जाने दूँगी ।” चारों ने समझाया—

“माँ ! तेरा ममता-भरा सत्कार हम भला कभी भूज पायेंगे ? वह छाछ क्या थी, अमृत था । अब हमें आज्ञा दो । दूर का सफर है, फिर धूप होगी, ठण्ड-ठण्ड में सफर करना अच्छा रहेगा ।”

बुढ़िया मान गई । चारों अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान कर गए ।

×

×

×

दिन निकला तो बुढ़िया अपने दैनिक कार्यों में लगी । रात की बासी छाछ निकालकर, उसे दही बिलोना था । बुढ़िया ने ज्योंही रात की छाछ निकाली तो उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गईं । छाछ में काला साँप मरा पड़ा था । बुढ़िया का सिर घूम गया, आँखें पथरा गईं—‘अब क्या हो ? अनजाने ही मेरे हाथ से यह पाप हो गया । चारों ही जहरीली छाछ पी गए, अब न जाने कहाँ पहुँचे होंगे ।’

दिनभर बुढ़िया बहुत दुःखी रही । अब उसके हाथ में केवल पछतावा ही रह गया था । उन्हें विषमुक्त करने का कोई उपाय उनके पास नहीं था ।

×

×

×

एक वर्ष बीता वही चारों व्यक्ति धनोपार्जन के लिए

अपने घर से चले। चारों ने ही निश्चय किया कि इस बार भी उस छाछ पिलाने वाली बुढ़िया के घर ठहरेंगे। चारों ही बुढ़िया के यहाँ पहुँचे। बुढ़िया ने चारों को देखा और बार-बार अपनी आँखों को मला। अपना आश्चर्य व्यक्त करती हुई बुढ़िया बोली—

“क्या तुम वही चारों हो जो एक बार मेरे यहाँ ठहरे थे।”

चारों ने कहा—

“हाँ माँ ! हम वही हैं। तूने हमें छाछ पिलाई थी, याद है न ?”

“याद है !” बुढ़िया बोली—“पर तुम अभी तक जिन्दा हो ?”

चारों को बुढ़िया का कथन बुरा तो लगा, पर बुढ़िया बुरे स्वभाव की नहीं थी। उसके हृदय में उन चारों के लिए आतिथ्य-प्रेम और ममता-भाव था। चारों ने पूछा—

“माँ ! तुम ऐसा क्यों कहती हो ?”

बुढ़िया ने पूरी बात बताते हुए कहा—

“बेटा ! मुझे क्या पता था कि उसमें काला साँप मरा पड़ा है। धोखे से ही मैंने वह जहरीली छाछ तुम्हें पिला दी।”

चारों के मुँह से एक साथ निकला—

“साँप !!”

“काला साँप ! जहरीली छाछ !!”

चारों पर सर्प-विष का मारक प्रभाव हुआ । चारों ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े और थोड़ी ही देर में उनके प्राण-पखेरू उड़ गए ।

बुरा आचरण ही नहीं लेकिन बुरा विचार भी जीवन में कितना खतरनाक है ?

सोना और पत्थर

एक राजा को अपना खजाना भरने का शौक लगा । प्रजा पर कर बढ़ाया और सोना खरीद-खरीद कर अपना खजाना भरने लगा । राजा का खजाना बढ़ता गया और कर-भार से प्रजा की कमर टूटने लगी । प्रजा में हाहाकार मच गया ।

बुद्धिमान मंत्री ने विचार किया कि सीधे कहने से तो राजा मानेगा नहीं, किसी युक्ति से ही समझाया जाए । मन्त्री ने मन-ही-मन एक योजना बनाई और एक दिन राजदरवार में नहीं पहुँचा । जब दूसरे दिन पहुँचा तो राजा ने एक दिन अनुपस्थित रहने का कारण पूछा । मन्त्री ने बताया—

“महाराज ! कल एक जरूरी काम में फँस गया था ।”

“ऐसा क्या जरूरी काम था ?” राजा ने पूछा ।

मन्त्री ने बताया—

“महाराज ! मैं अपना खजाना भरवाने के काम में लगा था ।”

मन्त्री की बात पर राजा को आश्चर्य हुआ। राजा ने सोचा, 'पूरे राज्य में राजा का अर्थात् मेरा ही खजाना है। मेरे अलावा मन्त्री के पास भी खजाना है?' अपने आश्चर्य को दबाते हुए राजा ने पूछा—

“मन्त्री ! अपना खजाना तुमने हमें नहीं दिखाया ? हमें भी तो दिखाओ ।”

मन्त्री—चलिए राजन्, आज ही चलिए। आज पूरा धन खजाने में भरवाकर मैं बन्द कराने की आज्ञा नौकरों को दे आया हूँ।

राजा मन्त्री के घर पहुँचा। मन्त्री के आँगन में कई गड्ढे खुदे पड़े थे। पत्थरों के ढेर भी लगे थे और गड्ढों से निकली मिट्टी भी वहीं पड़ी थी। राजा ने चारों ओर देखा और मन्त्री से पूछा—

“कहाँ है, तुम्हारा खजाना ?”

मन्त्री ने नौकरों को हुक्म दिया—

“ये पत्थर गड्ढों में भरकर ऊपर से मिट्टी डाल दो।”

नौकर ऐसा ही करने लगे। मन्त्री ने राजा से कहा—

“देखिए राजन् ! नौकर मेरा खजाना भर रहे हैं।”

राजा झुँझलाया—

“मन्त्री ! तुम पागल तो नहीं हो ? ये पत्थर हैं। क्या यह पत्थर ही तुम्हारा खजाना है ?”

मन्त्री ने मुस्कराकर कहा—

“राजन् ! आपके सोने और मेरे पत्थर में क्या अन्तर है ? अनुपयुक्त रूप से रखा सोना और पत्थर एक ही बात है । आपका पत्थर पीले रंग का है, मेरा सोना लाल रंग का है । प्रजा पर कर-भार बढ़ाकर सोना गाड़ना और पहाड़ों से मँगाकर पत्थर गाड़ना एक ही बात है । मेरा पत्थर भी किसी के काम नहीं आयेगा—जमीन में पड़ा रहेगा । आपका खजाना भी बढ़ता जायेगा—न आपके काम में आयेगा, न प्रजा के काम में । ऐसे खजाने का बताइए क्या उपयोग है ?”

राजा की आँखें खुल गईं । उसने तुरन्त कर वसूली रोक दी और खजाने का धन प्रजाहित में लगा दिया ।

अपराध एक : दण्ड चार

एक न्यायप्रिय राजा के राज्य में गश्त के सिपाहियों ने चार चोरों को चोरी करते हुए रंगे हाथ पकड़ लिया । रातभर चारों बन्दीगृह में रहे । प्रातःकाल चारों को राजा के सामने प्रस्तुत किया गया । हथकड़ी पहने चारों एक पंक्ति में राजा के सम्मुख खड़े थे ।

राजा के आदेश पर पहले चोर की हथकड़ी खोली गई । राजा ने चोर को अपने निकट बुलाया और कहा—

“तुमने चोरी की ? बुरी बात है ।”

इतना कह राजा ने पहले चोर को मुक्त कर दिया । इसी तरह दूसरा चोर बुलाया और कहा—

“चोरी करते शर्म नहीं आई ? दूसरों का माल हड़पते तुम्हें जरा भी शर्म नहीं आती ? रात का चोर दिन में साहूकार और शरीफ बनकर रहे, यह मनुष्य जीवन की कैसी विडम्बना है ।”

इतनी भर्त्सना कर राजा ने दूसरे चोर को भी छोड़ दिया ।

जब तीसरे चोर की वारी आई तो राजा ने आदेश दिया—“पचास कोड़े मारकर इसे मुक्त कर दो।”

राजा ने चौथे चोर को सजा सुनाई—

“इसमें सौ कोड़े मारो और छह महीने के लिए कारागार में बन्द कर दो।”

राजा के इस अद्भुत न्याय पर सभी को आश्चर्य हुआ। प्रधानमंत्री से न रहा गया। उसने राजा से पूछा—

“प्रजापालक ! आपकी न्याय-प्रियता में सन्देह करना और गूलर में फूल ढूँढ़ना एक ही बात है। लेकिन आज के न्याय को देखकर पूरा दरबार आश्चर्यचकित है। चारों ही चोर एक से ही अपराधी थे। अपराधियों के इस पक्षपात में क्या रहस्य है ? दो चोर तो आपने यों ही छोड़ दिये। एक को पचास कोड़े की सजा दी और चौथे को सौ कोड़े भी मिले तथा छह महीने का कठोर कारावास भी। यदि चोरों के साथ—अपराधियों के साथ ऐसी उदारता बरती जायेगी तो अपराधी निश्चिन्त हो जाएँगे तथा अपराध और बढ़ेंगे।”

राजा क्षणभर मौन रहा। पूरा दरबार कारण जानने को उत्सुक था। राजा ने कहा—

“महामन्त्री ! दण्ड का उद्देश्य अपराधी को सुधारना है, उसे यातना व कष्ट देना नहीं। जो भी यातना व कष्ट दिया जाता है, वह भी सुधार के लिए ही दिया जाता है।

किसी की आत्मा को कष्ट मिलता है और किसी के शरीर को । किसी को वात की चोट लगती है, किसी को लात की । सुधरने वाला हल्की-सी चोट से भी सुधर जाता है और न सुधरने वाला बार-बार दण्ड पाकर भी अपराध करना नहीं छोड़ता ।”

अपनी बात कहकर राजा मौन हो गया । मन्त्री की समझ में कुछ नहीं आया । उसने फिर पूछा—

“लेकिन महाराज ! अपराध और दण्ड का कोई-न-कोई विधान भी तो होता है । आज के न्याय में जो असमानता थी, उसका कारण समझ में नहीं आया ।”

राजा ने कहा—

“मन्त्री ! कारण भी समझ जाओगे । इसके लिए तुम्हें छह महीने की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । छह महीने बाद सब बातें तुम्हारे सामने स्पष्ट हो जायेंगी ।”

×

×

×

छह महीने बाद राजा ने मन्त्री से कहा—

“महामन्त्री ! आज से छह महीने पहले जो चार चोर पकड़े गये थे, उन सबके पते आरक्षी विभाग में सुरक्षित हैं । तुम उन चारों का पता लगाकर दो कि उनका क्या हाल है ।”

“जो आज्ञा !” कहकर मन्त्री चला गया । पूरी जाँच-पड़ताल कर मन्त्री ने बताया—

“महाराज ! पहला चोर जिससे आपने यह कहा था— ‘तुमने चोरी की ? बुरी बात है ।’ वह चोर उसी रात जहर पीकर मर गया । राजन् ! दूसरे चोर से आपने कहा था— ‘चोरी करते शर्म नहीं आई ? दूसरों का माल हड़पते तुम्हें जरा भी शर्म नहीं आती ? रात का चोर दिन में साहूकार और शरीफ बनकर रहे, यह मनुष्य जीवन की कैसी विडम्बना है ?’ महाराज ! वह दूसरा चोर नगर छोड़कर भाग गया । पता लगाकर मैं उसके पास पहुँचा तो देखा, वह चोरी छोड़कर मेहनत-मजदूरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहा है । जिस चोर को आपने पचास कोड़ों की सजा दी थी, वह रह तो इसी नगर में रहा है, पर उसने चोरी करना छोड़ दिया है । वह भी मेहनत-मजदूरी करके अपना व अपने परिवार का पेट पालता है । महाराज ! चौथा चोर जो सौ कोड़े और छह महीने का कारावास भोगकर निकला है, अब भी चोरी करता है ।”

मन्त्री की बात समाप्त होने पर राजा ने मुस्कान के साथ कहा—

“मन्त्री ! अब तो तुम्हें मेरे अद्भुत न्याय का रहस्य मालूम हो गया ? पहले चोर की आत्मा इतने से ही तड़प उठी कि मैंने उसे चोर कहा । वह ‘बुरी बात है’ से ही इतना शर्मिन्दा हुआ कि दुनिया को अपना मुँह नहीं

दिखाया। दूसरे-तीसरे का भी यही हाल था। जिस नगर के लोगों ने दिन के उजाले में उसे चोर रूप में देख लिया, उस नगर में रहना दूसरे चोर को वर्दाशत नहीं हुआ।..... चौथे चोर की आत्मा इतनी मर गई है कि शर्म जैसी चीज उसके पास नहीं रही। शारीरिक दण्ड की कठोरता से वह दण्ड भोगते समय तो यह निश्चय कर लेता है कि अब चोरी नहीं करूँगा और जब कारागार से मुक्त होता है तो सब भूल जाता है और चोरी करते समय यही सोचता है, 'जब तक पकड़ा नहीं जाता, तब तक चोरी कर लूँ। जब पकड़ा जाऊँगा, तब देखा जायेगा।' इसीलिए मैंने उसे यह कठोर दण्ड दिया था।”



शूल को त्रिशूल

एक गरीब ब्राह्मण अपने दुर्दिनों से बहुत दुःखी था। 'वामन को धन केवल भिच्छा' लोकोक्ति के अनुसार भिक्षा ही उसका धन था। नित्य भिक्षा में जो कुछ मिलता— ब्राह्मण और ब्राह्मणी उसी से गुजर करते। ब्राह्मण गरीब तो था ही, विद्याहीन भी था। लेकिन अपढ़ होते हुए भी वह विनम्र, उदार और सरल-हृदय था। एक दिन उसकी ब्राह्मणी ने परामर्श दिया—

“तुम नित्य राजदरबार में जाया करो। किसी-न-किसी दिन राजा की कृपा हो गई तो निहाल कर देगा।”

ब्राह्मण नित्य राजदरबार में जाता। दरबार की समाप्ति तक बैठा रहता और चलते समय कहता— 'धर्म की जय, पाप का क्षय' 'भले का भला, बुरे का बुरा।'

राजा नित्य ही उस ब्राह्मण को देखता। एक दिन उसने पूछा—

“विप्र ! तुम कहाँ रहते हो ?”

“आपकी छत्र-छाया में।” गरीब ब्राह्मण ने उत्तर दिया।

अब राजा नित्य ही ब्राह्मण से पूछताछ करता। कभी उसके परिवार के बारे में पूछता, कभी उसके सुख-दुःख की बातें करता।

कहावत है—‘वामन कुत्ता हाथी, नहीं जाति के साथी।’ ब्राह्मण ब्राह्मण को देखकर जलता है। राज-पुरोहित को राजा द्वारा ब्राह्मण का यह सम्मान अच्छा नहीं लगा। एक दिन राजपुरोहित रास्ते में ही ब्राह्मण को रोककर बोला—

“तुम नित्य राज-दरबार आते हो, पर दरबार के नियमों का पालन नहीं करते। किसी दिन राजा उल्टा पड़ गया तो कठोर दण्ड देगा।”

ब्राह्मण डर गया। घबराकर पुरोहित से बोला—

“पुरोहितजी ! मैं तो अपढ़ और विद्याहीन ब्राह्मण हूँ। आप शास्त्रज्ञ और राजपुरोहित हैं। दरबार का शिष्टाचार मुझे बताइए।”

पुरोहित ने कहा—

“दरबार में मुँह पर पट्टी बाँधकर आना चाहिए।”

ब्राह्मण ने पुरोहित का आदेश मन में रख लिया। दरबार में पहुँचकर पुरोहित ने राजा से कहा—

“राजन् ! आप शराबी ब्राह्मण को मुँह मत लगाइए ।
जब भी यह पैसा पाता है, शराब पीता है ।”

राजा को आश्चर्य हुआ । पूछा—

“इसका क्या प्रमाण है कि वह दरिद्र ब्राह्मण
शराबी है ?”

पुरोहित ने बताया—

“जिस दिन यह शराब पीता है, मुँह पर कपड़ा बाँध
लेता है ।”

यथासमय गरीब ब्राह्मण मुँह पर कपड़ा बाँधकर
दरबार में पहुँचा और वही पुराना वाक्य दुहराया—

“धर्म की जय, पाप का क्षय; भले का भला, बुरे का
बुरा ।”

राजा पहले तो मुस्कराया और फिर मुँह पर कपड़ा
बँधा देख मन-ही-मन क्रुद्ध हुआ । ब्राह्मण को अपने
पास बुलाकर उसके हाथ में एक बन्द लिफाफा दिया और
बोला—

“तुम नित्य दरबार में आते हो । आज अपना इनाम
लो । यह बन्द लिफाफा खजांची को देना, तुम्हारा इनाम
मिल जाएगा ।”

खुशी-खुशी ब्राह्मण खजांची के पास चला । रास्ते में
ही राजपुरोहित ने जा पकड़ा—

“हमें भूल ही गए। हमारी बात मानने का कमाल देख लिया। पहले ही दिन लिफाफा मिल गया।”

ब्राह्मण पुरोहित के चरणों में गिर पड़ा। बोला—

“पुरोहितजी ! आपकी कृपा से ही सब कुछ मिला है। मुझे जो भी इनाम मिलेगा, आधा आपको दक्षिणा में दूँगा।”

पुरोहित झल्लाया—

“मूर्ख ! तू बड़ा कृतघ्न है। पहले दिन का पूरा इनाम हमें दक्षिणा में दे।”

ब्राह्मण सकुचाया। बोला—

“पुरोहितजी ! महीनों की हाजिरी के बाद मुझे इनाम मिला है और आप सब-का-सब दक्षिणा में लेंगे ?”

पुरोहित ने डाँटा—

“लेकिन यह मिला तो मेरी कृपा से है। अगर नहीं देगा तो……।”

ब्राह्मण ने बन्द लिफाफा पुरोहित के हाथ पर रख दिया। पुरोहित ने कुछ विचारकर लिफाफे के बदले बीस रुपये उस ब्राह्मण को दे दिये।

ब्राह्मण बीस रुपये लेकर अपने घर चला गया और पुरोहित खजांची के पास पहुँचा। खजांची ने लिफाफा खोला। उसमें जो कागज था, उस पर लिखा था—

सुनो खजांची बात मम, करना नहीं विचार ।

आवे जब ही विप्र यह, लीजो नाक उतार ॥

खजांची पुरोहित को लेकर तहखाने में पहुँचा और पुरोहित की नाक काट ली । पुरोहित नाक पर पट्टी बाँध अपने घर पहुँचा ।

गरीब ब्राह्मण दूसरे दिन मुँह पर पट्टी बाँध दरबार में पहुँचा और नित्य की तरह जाते ही कहा—

“धर्म की जय, पाप का क्षय; भले का भला, बुरे का बुरा ।”

राजा ने ब्राह्मण को आश्चर्य से देखा और पूछा—

“क्या तुम मेरा लिफाफा लेकर खजांची के पास नहीं पहुँचे ?”

ब्राह्मण ने अपने भाग्य का रोना रोया—

“प्रजापालक ! आपने तो मुझे इनाम दिया, पर मेरे भाग्य में नहीं था, सो मुझे नहीं मिला ।”

राजा को और भी आश्चर्य हुआ । ब्राह्मण को अपने पास बुलाया और पूछा—

“सच-सच बताओ क्या बात है ?”

ब्राह्मण ने आप-बीती सुनाई । राजा ने सुना तो आग-बबूला हो गया । राजा ने सेवक भेजकर पुरोहित को बुलवाया और पूरे दरबार में उसकी करतूत का कच्चा

चिट्ठा खोलते हुए कहा—

“जो किसी दूसरे का बुरा सोचता है, उसका बुरा पहले होता है ।

जो दूसरे के लिए शूल बिछाता है, उसके लिए त्रिशूल भी तैयार रहता है । कहा गया है—

बुरे का नतीजा हमेशा बुरा है ।

कांटे को कांटा, छुरे को छुरा है ॥

पुरोहित ने गरीब ब्राह्मण का बुरा चाहा, उसका परिणाम आप सबके सामने है ।”

राजा ने दण्डस्वरूप पुरोहित को देश निकाला दिया और उस गरीब ब्राह्मण को राजपुरोहित के पद पर अभिषिक्त किया ।

२५

सूत से भूत बँधता है

एक सेठ का परिवार बहुत बड़ा था । उसका व्यापार भी खूब उन्नत था । जनशक्ति और धनशक्ति—दोनों से सम्पन्न था वह सेठ ।

एक दिन सेठ ने एक मोटी रस्सी मँगवाई और सभी परिजनों को एकत्र करके बोला—

“एक-एक करके अपनी शक्ति की परीक्षा करो और इस रस्सी को तोड़ो ।”

एक-एक करके सभी ने रस्सी को तोड़ने की कोशिश की पर किसी से भी वह रस्सी नहीं टूटी । सेठ ने रस्सी ली और उल्टा ँँठकर उसके रेशे अलग कर दिये और बोला—

“अब तोड़ो ।”

सभी ने अलग-अलग रेशों को चट्-चट् करके तोड़ दिया ।

सेठ ने सभी को सम्बोधित किया—

“अगर तुम सब अलग-अलग रहोगे तो कोई भी तुम्हें तोड़ सकता है। एक होकर रस्सी की तरह संगठित रहोगे तो साक्षात् यमराज भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।”

सेठ घर का मुखिया था। कोई भी उसकी बात का विरोध न करता। जो वह कहता सब एक स्वर से उसकी बात मानते। सबमें एकता और संगठन था।

×

×

×

एक समय ऐसा आया कि सेठ का व्यापार चौपट हो गया। दो समय की रोटी जुटाना भी मुश्किल हो गया। बड़ा परिवार था, सबमें एकता थी, इसलिए जो भी काम सामने आता—मिल-बाँटकर सभी कर डालते और किसी-न-किसी तरह दो समय की रोटी जुटा ही लेते। एक दिन सेठ ने सबसे कहा—

“एक दिन का खाना लेकर सभी मेरे साथ जंगल चलो। जंगल में ही मंगल करेंगे।”

सभी ने एक वट वृक्ष के नीचे पड़ाव डाला। सेठ ने सभी को आदेश दिये और सभी का काम बाँट दिया। कोई मूँज काटने लगा, कोई सरकण्डे अलग करने लगा, कोई मूँज कूट रहा था, कोई रस्सी वट रहा था। सब अपने-अपने काम में लगे थे। सेठ घूम-घूमकर सबका निरीक्षण कर रहा था।

उक्त वट वृक्ष पर एक भूत रहता था। भूत ने खट-पट देखी तो घबराया—मेरे एकान्तवास में यह बाधा कहाँ से आई ? भूत एक-एक करके सभी के पास गया और बोला—“आप लोग मेरे रहन-सहन में खलल न डालें। यहाँ से भाग जाओ, वरना एक-एक को खा जाऊँगा।”

सभी ने सरोष कहा—

“तू देखता नहीं, हम एक नहीं अनेक हैं। हम अनेक होकर भी एक हैं और एक होकर भी अनेक हैं। अगर तुझे कुछ परेशानी है तो हमारे सेठजी से जाकर कह।”

भूत सेठ के पास पहुँचा और बोला—

“सेठ ये सब लोग रस्सियाँ बट रहे हैं। रस्सियाँ किस काम आएँगी ?”

सेठ ने कहा—

“तुझे बाँधूँगा।”

भूत थर-थर काँपने लगा। उसे विश्वास हो गया कि ये सब मिलकर मुझे अवश्य बाँध लेंगे। इन सबमें सूत (एकता) है। सूत (एकता) से भूत बँध जाता है।

खुशामद-भरे स्वर में भूत बोला—

“मैंने आपका क्या बिगाड़ा है ? आप मुझे क्यों बाँधना चाहते हैं ?”

सेठ ने बताया—

“हमें धन की जरूरत है। यहाँ से धन लेकर ही जायेंगे। हम यहाँ अपना व्यापार करने आये थे। तू हमारे व्यापार में बाधा डालता है, इसलिए तुझे बाँधेंगे।”

भूत ने तत्काल सेठ को धन से भरे कलश बता दिये। रातोंरात वह सामान्य सेठ से धनी सेठ बन गया। चमत्कारी ढंग से उसकी काया पलट हो गई। सेठ सुख से अपना जीवन बिताने लगा।

सेठ के पड़ौसी सेठ ने अपनी कूटनीति से सेठ के स्तर के आकस्मिक परिवर्तन का पता लगा लिया। उसके मुँह में भी पानी भर आया।

रो-झींककर उसने अपने परिवार वालों को इकट्ठा किया। कोई आया और किसी ने कह दिया—हम नहीं आते। बड़ी खुशामद से सेठ ने सबसे जंगल चलने को कहा। कुछ ने स्वीकार किया। कुछ ने कह दिया—‘अपना घर छोड़कर हम कहीं नहीं जायेंगे।’ जैसे-तैसे सब जंगल पहुँचे। सेठ ने किसी से कहा—‘तुम मूँज काटकर लाओ।’ जवाब मिला—‘हमें क्यों भेजते हो, उसको भेजो; हम तो दूसरा काम करेंगे।’ आधा दिन सेठ को काम बाँटने में लग गया। किसी ने मन लगाकर काम नहीं किया। कुछ तो हाथ-पर-हाथ रखे बैठे रहे। वट वृक्ष पर बैठा भूत सब तमाशा देख रहा था। इस दूसरे सेठ ने नाटक का अन्तिम

दृश्य भी अभिनीत किया। कुटी हुई मूँज लेकर रस्सी बटने बैठ गया। भूत ने उससे भी आकर पूछा—

“सेठ, यह रस्सी क्यों बट रहे हो ?”

रटे-रटाये स्वर में सेठ ने कहा—

“तुमको बाँधूँगा।”

सेठ की बात सुनकर भूत ने ऐसा ठहाका मारा कि जंगल गूँज उठा। सेठ के घर वाले डर गए और सेठ पर बरस पड़े—

“हमें यहाँ कहाँ मरवाने ले आये ? अब हम यहाँ नहीं रुकेंगे। यहाँ तो कोई भूत मालूम पड़ता है—कैसी डरावनी हँसी थी ?”

भूत ने सेठ से कहा—

“क्या इसी बल पर मुझे बाँधना चाहते थे ? सेठ ! तुम पहले सेठ की नकल कर रहे हो। सूत से भूत बँधता है। पहले अपने परिवार को एकता के सूत्र में बाँधो, तब मुझे बाँधने की सोचना।”

सेठ को भूत का कथन सत्य लगा। जब मैं अपने परिजनों से उत्तर चलने के लिए कहता हूँ तो ये पश्चिम चलते हैं। मैं भला भूत को कैसे बाँधूँगा ?

अपना-सा मुँह लेकर सेठ घर आ गया।



सुर-असुर का भेद

पुराने समय में एक प्रतापी, बुद्धिमान और दानवीर राजा था। वह नित्य ही याचकों को दान दिया करता था। महीने के अन्त में प्रत्येक पूर्णिमा को वह देव-दानवों को भी अपने हाथ से परोस कर भोजन कराता था। सुर-असुर—दोनों ही उसके आतिथ्य-प्रेम से सन्तुष्ट रहते थे।

देव-दानवों की शत्रुता शाश्वत है। दानव कभी भी देवताओं का उत्कर्ष नहीं देख पाते। एक बार सभी असुरों ने विचार किया कि यह दानी राजा वैसे तो देव-दानव—दोनों को ही समान रूप से भोजन कराता है, पर यह पहले देवताओं को खिलाता है और बाद में हमें भोजन कराता है। इसका यही मतलब निकलता है कि वह देवों को दानवों से श्रेष्ठ मानता है। लेकिन हम भी देवों से कम नहीं हैं। अब आगे से हम देवों से पहले भोजन करेंगे। ऐसा विचार कर सभी असुर दानवीर राजा के पास पहुँचे। दानवों के प्रतिनिधि एक दानव ने राजा से कहा—

“राजा ! तू यह कहता था कि मेरे लिए देव-दानव

दोनों ही बराबर हैं। लेकिन तू हम दोनों में भेद मानता है।”

“कैसे ?” राजा ने पूछा।

दानव-प्रतिनिधि ने बताया—

“राजा ! तू हमेशा देवों को पहले भोजन कराता है और हम सबको बाद में खिलाता है। आगे से हम ऐसा नहीं होने देंगे। अब हम पहले खायेंगे।”

राजा ने विचार किया कि यदि मैं असुरों की बात नहीं मानूँगा तो ये सभी कुपित होकर मेरे राज्य में उत्पात मचा देंगे और यदि मैं देवों को पहले नहीं खिलाऊँगा तो अच्छे-बुरे का भेद ही मिट जायेगा। सोचते-सोचते राजा ने मन-ही-मन एक युक्ति सोच ली और दानवों से कहा—

“दानवो ! वैसे तो तुम दोनों मेरे लिए समान हो, पर देव-दानवों के मनोभाव मैं एक अन्तर है, इसीलिए मैं उनको पहले खिलाता था। अब यदि तुम भी देवताओं जैसा विचार बना लो तो मैं हमेशा तुमको ही पहले खिलाया करूँगा।”

दानव किसी भी बात में देवताओं से कम नहीं होना चाहते थे। अतः उन्होंने राजा से पूछा—

“देवताओं में ऐसी कौन-सी बात है, जो हम में नहीं है ?”

राजा ने स्पष्ट किया—

“दानवो ! अगली पूर्णिमा को मैं तुम्हें पहले खिलाऊँगा और देवों को बाद में । लेकिन इस बार मेरी एक शर्त होगी । उस शर्त के साथ यदि तुमने भोजन कर लिया तो देवों की तरह प्रथम पूज्य मानकर हमेशा तुम्हें ही पहले खिलाया जायेगा और तुम्हारे मनोभाव की भी परीक्षा हो जायेगी ।”

उत्सुक होकर सभी असुरों ने पूछा—

“कौन-सी शर्त है ?”

राजा ने बताया—

“तुम्हारी दोनों बाँहों को बाँहों के बराबर दो डण्डों से बाँध दिया जायेगा । ऐसा ही देवताओं के साथ भी किया जायेगा । इस बन्धन के साथ पहले तुम भोजन करोगे और फिर देवों की बारी आयेगी । यदि बँधी हुई भुजाओं से तुमने भरपेट भोजन पा लिया तो तुम भी देवों की तरह हमेशा पहले भोजन करोगे ।”

दानवों ने राजा की शर्त मान ली । पूर्णिमा के दिन सभी दानव भोजन करने बैठे । राजा ने सबको भोजन परोसा । नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों के रूप और गन्ध से दानवों के मुँह में पानी भर आया । उन्होंने भोजन करना शुरू किया । लेकिन बाँहें मुड़ी ही नहीं । हाथ सीधा तना रहा, बहुतेरी कोशिश की पर मुँह तक ग्रास

न पहुँचा। खाना इधर-उधर बिखरने लगा। दानवों ने बहुत सोचा-विचारा, पर कोई भी युक्ति उनकी समझ में नहीं आई। बहुत देर हो गई, सब खाना इधर-उधर बिखर गया।

“देखेंगे, अब देव लोग कैसे खायेंगे?” यह कहते हुए झुँझलाहट के साथ सब असुर उठ गये। अब देवों की बारी आई। उनके भी हाथ उसी तरह बँधे थे। जब देवों ने खाने के लिए हाथ मोड़ा तो हाथ नहीं मुड़ा। डण्डे के साथ बँधा होने के कारण जैसे राक्षसों का हाथ नहीं मुड़ा था, वैसे ही इनका हाथ भी सीधा तना रहा। देवों ने विचार किया—‘यह सीधा हाथ अपने मुँह तक तो नहीं पहुँचेगा पर दूसरे के मुख में बड़ी आसानी से चला जायेगा। यदि खुद खाने की लाचारी है तो हमारा साथी तो खा लेगा।’ यह सोच देवों ने बँधी हुई बाँह से अपने साथी को खिलाना शुरू कर दिया। इस प्रकार सभी देवों ने तृप्त होकर भोजन कर लिया।

×

×

×

असुर अपने बारे में ही सोचते रहे, इसलिए भूखे ही उठे। सुरों—देवों ने दूसरे का भला सोचा तो तृप्त होकर खाया। ‘भला’ उल्टा होकर भी ‘लाभ’ होता है। मन के भाव को बदलना असुर से सुर होना है। मन जब सुमन न जाता है तो सुमन के समान सदा खिला रहता है और

दूसरों को भी अपनी सुगन्ध से आनन्दित करता है । परो-पकार की इसी भावना के कारण देवों को अमर कहा जाता है—

देवरूप होने का गुर बस, मन का यही बदलना ।
सदा सोचना भला सभी का, नहीं किसी को छलना ॥
देव-असुर का अन्तर केवल, यही सोचना-भर है ।
इसी भाव के कारण देखो, देवी-देव अमर हैं ॥



२७

वशीकरण का रहस्य

भक्तप्रवर दादू सदा अपनी आध्यात्मिक मस्ती में झूमते रहते थे। एक दिन उनके आश्रम में एक मुसलमान महिला आई। उसने उनके चरणों में गिरकर कहा—भक्त-प्रवर ! आपने मुझे पहचाना नहीं है। मेरे पति गुजरात के महाप्रतापी सुलतान हैं। पहले उनका मेरे पर अत्यधिक स्नेह था, पर न जाने धीरे-धीरे स्नेह क्यों कम हो गया। अब तो वे मेरे से बोलना भी पसन्द नहीं करते, अतः आप ऐसा वशीकरण मन्त्र दें जिससे सुलतान मेरे वश में हो जायें।

दादू ने मुस्कराते हुए कहा—बहिन ! मैं जादू-टोना नहीं करता, और न मुझे जादू-टोना करना आता ही है। मेरा आत्म-विश्वास है कि सेवा व प्रेम ही ऐसा पवित्र पथ है जिस पर चलने से सभी वश में हो जाते हैं। तुम भी उसी पथ का अनुसरण करो। प्रेम से सुलतान की सेवा करो। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जायेंगी।

पर बेगम ऐसे कहाँ मानने वाली थी ! उसने स्पष्ट

शब्दों में कहा—जब तक आप मुझे वशीकरण मन्त्र नहीं देंगे तब तक मैं यहाँ से न जाऊँगी ।

दादू के सामने एक गम्भीर समस्या थी, उन्होंने चट से एक कागज के टुकड़े पर लिखकर देते हुए कहा—इसे अपना, सभी तरह से आनन्द होगा ।

बेगम उसे लेकर चल दी । दिन पर दिन बीतते चले गये । सन्त दादू उस घटना को भूल गये थे । एक दिन प्रातःकाल ही अनेक ऊँट, घोड़ों पर सामान लादा हुआ एक काफिला दादू के आश्रम पर पहुँचा ।

आश्रमवासियों ने जब जिज्ञासा प्रस्तुत की तब काफिले के अधिकारी ने बताया कि यह सारा सामान गुजरात की बेगम ने दादूजी के श्रीचरणों में भेजा है । उन्होंने जो बेगम साहिबा को वशीकरण मन्त्र दिया था उससे सुलतान इतना उनके अधीन हो गया है कि उनकी बिना इच्छा के वह कोई भी कार्य नहीं करता है । वे स्वयं आतीं, पर कार्य में व्यस्त होने से नहीं आ सकी हैं, पर उन्होंने यह उपहार आपको प्रेषित किया है ।

आश्रमवासियों ने जब सुना कि दादू ने वशीकरण मन्त्र दिया है तो उनके आश्चर्य का पार न रहा ? उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि दादूजी जादू-टोना नहीं करते हैं तुम भूल से यहाँ आ गये हो ।

“अरे ! तुम हमें दादूजी से मिलाओ, उन्होंने दिया है ।”

काफिले के अधिकारी ने आग्रहपूर्वक कहा ।

जब उन्होंने दादू से जाकर कहा तो दादू भी आश्चर्य-चकित हो गये । उन्होंने कहा मैंने आज दिन तक किसी को भी वशीकरण मन्त्र नहीं दिया है । बताओ कहाँ है वह ताबीज ।

ज्योंही अधिकारी ने ताबीज धीरे से उनके हाथ में दिया, उसे खोलकर पढ़ा, उसमें लिखा था—

टामन-टूमन हे सखी, कर मत कभी कोय ।

प्रेम भरै सेवा करै, आपाहि पति वश होय ॥

उन पंक्तियों को पढ़ते ही दादूजी की स्मृति जाग उठी—
'हाँ-हाँ स्मरण आया, कुछ वर्ष पूर्व एक महिला को मैंने यह पंक्तियाँ लिखी थीं । पर यह वशीकरण मन्त्र नहीं, वशीकरण का रहस्य इसमें अवश्य रहा हुआ है ।'

समर्पण और स्वार्थ

एक राजा के चार रानियाँ थीं। राजा को चारों प्यारी थीं और राजा भी चारों को प्यारा था। चारों रानियों में भी सौतिया डाह नहीं था।

एक बार राजा अपने मित्र राजा के बुलावे पर दूसरे देश गया। आतिथ्य-सत्कार में महीनों बीत गए। इधर राजा की अनुपस्थिति में निराकार विरह-वियोग ने अपना आसन जमा लिया। रानियों ने दूत भेजा—‘आपका विरह अब नहीं सहा जाता।’ राजा ने रानियों का पत्र पढ़ा और दूत के हाथ अपना सन्देश भेजा—

“अमुक तिथि को मैं अपनी राजधानी आ रहा हूँ। इस देश में बहुत-सी ऐसी चीजें हैं जो हमारे यहाँ ऐसी नहीं होतीं। मेरे मित्र राजा के देश में अद्वितीय आभूषण बनते हैं। यहाँ का हीरकहार देखने वाले के हृदय में बस जाता है। यहाँ के नूपुरों की झनकार बड़ी मधुर होती है और जो स्त्री यहाँ के कर्णफूल पहन लेती है तो देखने वाला यह निश्चय नहीं कर पाता कि कर्णफूल देखूँ या

कर्णफूल पहनने वाली को देखूँ । तुम चारों जो भी चाहो अपनी-अपनी पसन्द लिखकर भेज दो ।”

रानियों ने अपने-अपने निजी पत्रों में अपनी-अपनी पसन्द की चीजें लिखीं और पत्रवाहक द्वारा पत्र राजा के पास भेज दिये ।

राजा के आगमन पर नगरी नववधू-सी सज गई । राजा ने अन्तःपुर में चारों रानियों को उनकी पसन्द की चीजें बाँटीं । बड़ी रानी अपने हीरकहार की दिव्य छटा को देखती ही रह गई । दूसरी रानी कर्णफूलों को पाकर फूली नहीं समाई । तीसरी रानी नूपुरों को पाकर निहाल हो गई । राजा ने चौथी रानी को वह सब दिया, जो वह अपनी पसन्द से अपने साथ लाया था । चौथी रानी भी भाव-विभोर हो गई ।

रानियों में ईर्ष्या भड़की । सौतिया डाह साकार हुआ । सबकी दृष्टि चौथी रानी के उपहारों पर टिकी थी । बड़ी रानी की भौंहें तिरछी हुई—

“आज पता चला कि आपके हृदय में कितना वैषम्य है ।”

राजा मुस्करा दिया तो दूसरी रानी ने ताना कसा—

“पुरुषों की मुस्कराहट में भी कपटभाव होता है ।”

तीसरी रानी ने चुनौती दी—

“एक पति के द्वारा वैषम्य शायद हम सह लेतीं, पर राजा द्वारा हुआ यह अन्याय हमें बर्दाश्त नहीं । हमें

न्याय-सभा में न्याय चाहिए कि यह पक्षपात एक न्यायप्रिय राजा के द्वारा क्यों हुआ।”

मुस्कराहट में ही राजा ने कहा—

“न्यायसभा में सभासदों के सम्मुख न्याय होगा।”

राजा के घरेलू झगड़े का न्याय-निर्णय सुनने के लिए सभा खचाखच भरी थी। राजा ने मौन भंग किया—

“मन्त्री ! चारों रानियों के वे पत्र पढ़ो, जो उन्होंने मेरे लिए यहाँ आने से पहले लिखे थे।”

मन्त्री ने बड़ी रानी का पत्र पढ़ा—

“स्वामी ! मेरे लिए हीरकहार लेते आइए।”

दूसरे पत्र में कर्णफूलों की माँग थी और तीसरे पत्र में तूपुर मँगाये गये थे। मन्त्री ने सबसे छोटी रानी का चौथा पत्र पढ़ा—

“प्राणधन ! मेरे लिए आप ही सब कुछ हैं। मेरे लिए तो आप ही आयें, मैं तो मात्र आपको ही चाहती हूँ।”

शिकायत करने वाली तीनों रानियों ने भी चौथी रानी का पत्र सुना। अब उन्हें स्वयमेव यह निश्चय हो गया कि हमने स्वार्थ की साधना की और छोटी रानी ने स्वयं को समर्पित किया। इसीलिए राजा ने उसे वह सब कुछ दिया, जो वे अपनी पसन्द से अपने साथ लाये थे।



सामुदायिकता की भावना

एक राजा ने एक तालाब बनवाया। दूध जैसे सफेद पत्थर (संगमरमर) से बने इस तालाब को देखकर राजा की इच्छा हुई, क्यों न इसे दूध से ही भरा जाए। पशु-पक्षी, मनुष्य जो भी आये, दूध से ही अपनी प्यास बुझाये।

राजा ने मन्त्री से अपनी इच्छा कही तो मन्त्री ने हँस कर कहा—

“राजन् ! इतना दूध आयेगा कहाँ से ?”

राजा ने पहले से तैयार उत्तर दिया—

“मन्त्री ! मैंने इस समस्या का हल भी खोज लिया है। इतनी बड़ी मेरी राजधानी है। हर घर से एक लोटा दूध तालाब में छोड़ा जाये तो तालाब दूध से भर जायेगा।”

“अच्छी बात है।” कहकर मन्त्री ने पूरे नगर में घोषणा करवादी कि हर व्यक्ति अपने घर से एक लोटा दूध इस तालाब में छोड़ेगा।

अपने-अपने घर से भरा हुआ लोटा लेकर सभी चल

दिये। एक व्यक्ति ने सोचा, 'इतने बड़े दूध से भरे तालाब में एक लोटा पानी क्या मालूम पड़ेगा। मैं तो एक लोटा पानी ही छोड़कर आता हूँ।'

×

×

×

प्रातःकाल राजा और मन्त्री दोनों ने पानी से लवालव भरे तालाब को देखा। राजा ने मन्त्री से कहा—

“मन्त्री ! मेरी आज्ञा का उल्लंघन हुआ है। सभी ने दूध की जगह पानी क्यों डाला ?”

मन्त्री ने कहा—

“नहीं राजन् ! यह सामुदायिकता की भावना है। जो एक ने सोचा, वही सबने सोचा। हर व्यक्ति यही सोच रहा था, सब तो दूध डालेंगे, मेरा एक लोटा पानी क्या मालूम पड़ेगा। परिणाम आपके सामने है।”

श्री देवेन्द्र मुनिजी का रोचक कथा-साहित्य

- | | |
|--|------|
| १. महावीर युग की प्रतिनिधि कहानियाँ
(७६ कहानियाँ) | १०) |
| २. खिलती कलियाँ : मुस्कराते फूल | ३)५० |
| ३. बोलते चित्र | २)५० |
| ४. अतीत के चलचित्र | २) |
| ५. प्रतिध्वनि | ३) |
| ६. फूल और पराग | १)५० |
| ७. अमिट रेखाएँ | २) |
| ८. महकते फूल | २) |
| ९. बुद्धि के चमत्कार | १)५० |
| १०. बिन्दु में सिंधु | २) |
| ११. सूली और सिंहासन | २)५० |
| १२. सोना और सुगन्ध | ३) |

-: सोना और सुगन्ध :-



नैतिकता, सदाचार, कर्तव्यनिष्ठा तथा साहस, क्षमा एवं सत्य-शील की प्रेरणा देने वाले लघुकथानक ।

श्री देवेन्द्रमुनि जी की सरल तथा भाववाही लेखिनी द्वारा लिखित 'सोना और सुगन्ध' पढिए तथा जीवन-स्वर्ण में सुगन्ध महकाइए ।

एक अपूर्व ग्रन्थ रत्न

जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा

जैन आगमों तथा उनके व्याख्या ग्रन्थों का सर्वांग सम्पूर्ण परिचय देने वाला ५०० पेज का महान ग्रन्थ रत्न ।

एक ही ग्रन्थ में सम्पूर्ण जैन साहित्य का समावेश गागर में सागर ।

मूल्य : ४०) रूपया